प्रकाशन तिथि : 26 नवम्बर 2014, मूल्य 3 रुपये, वर्ष 33, अंक 5, कुल पृष्ठ 36

वीतराग-विज्ञान

(पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट का मुखपत्र)

सम्पादक :
डॉ. हुकमचंद भारिल्ल

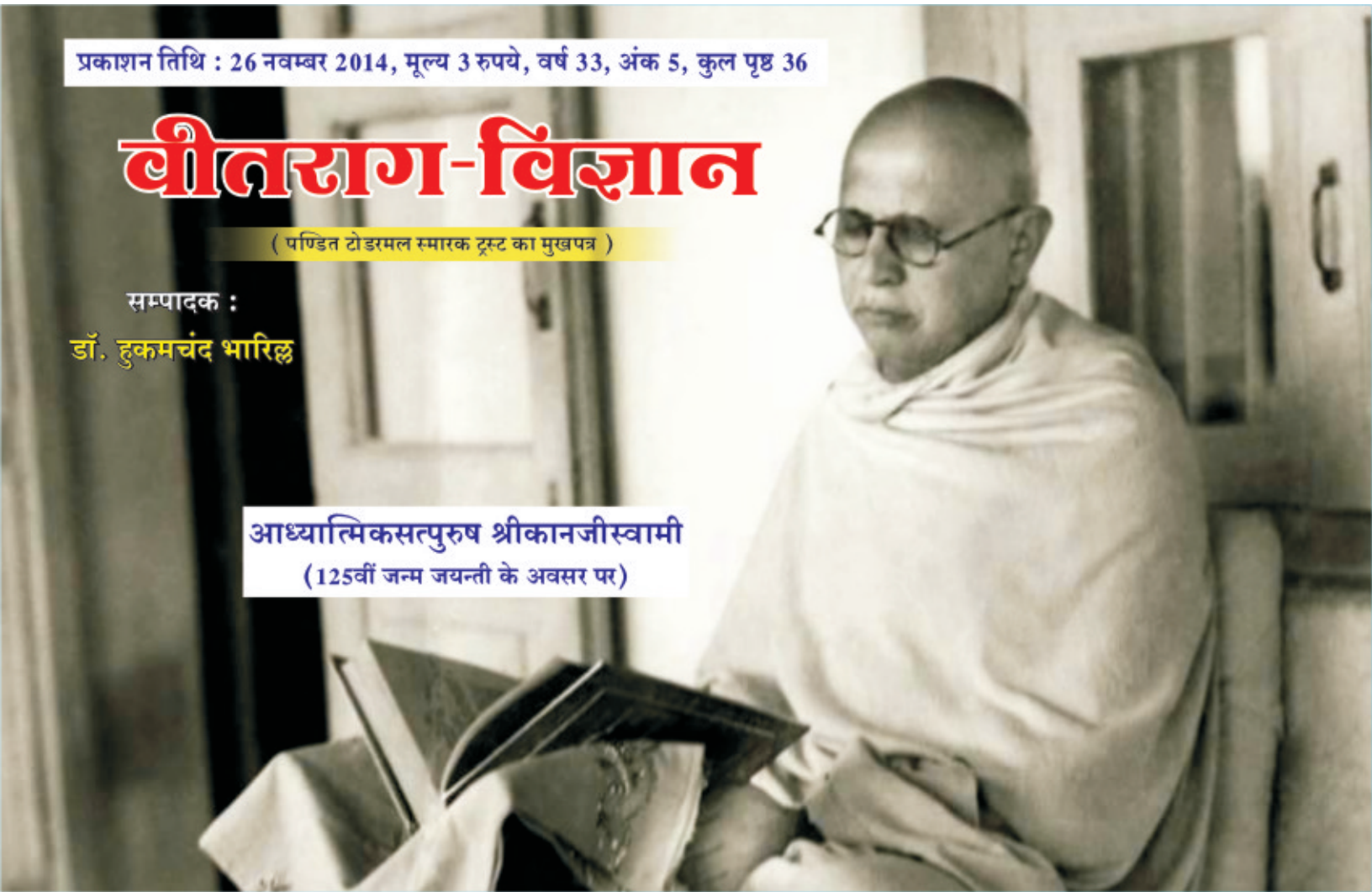

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी

(125वीं जन्म जयन्ती के अवसर पर)

वीतराग-विज्ञान (377)

हिन्दी, मराठी व कन्नड़ भाषा में प्रकाशित

जैनसमाज का सर्वाधिक बिक्रीवाला आध्यात्मिक मासिक

सम्पादक :

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

सह-सम्पादक :

डॉ. संजीवकुमार गोधा

प्रकाशक एवं मुद्रक :

ब्र. यशपाल जैन द्वारा पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के लिये रेनबो ऑफसेट प्रिण्टर्स, बाईस गोदाम, जयपुर से मुद्रित एवं प्रकाशित।

सम्पर्क-सूत्र :

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015

फोन :(0141)2705581, 2707458

फैक्स : 2704127

E-mail : ptstjaipur@yahoo.com

शुल्क :

आजीवन	:	251 रुपये
वार्षिक	:	25 रुपये
एक प्रति	:	3 रुपये

मुद्रण संख्या :

हिन्दी	:	7100
मराठी	:	2100
कन्नड़	:	1100
कुल	:	10300

ज्ञायक सदा ज्ञायक रूप ही है

स्वभाव से ही मैं ज्ञायक होने के कारण संपूर्ण विश्व के साथ मुझे ज्ञेय-ज्ञायक लक्षण सम्बन्ध है; परन्तु यह ज्ञेय इष्ट-अनिष्ट है अथवा ज्ञेय के कारण ज्ञान होता है अथवा यह ज्ञेय मेरा और मैं इसका स्वामी ऐसा किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है। ज्ञायक का सर्व ज्ञेयों को जानने का स्वभाव होने से मानो लोकालोक ज्ञायक में उत्कीर्ण हो गये हों, इसप्रकार एक क्षण में जान लेता है। ऐसे ज्ञेय-ज्ञायक-लक्षण सम्बन्ध के कारण एकसाथ अनंत ज्ञेयों को अनंतरूप से जानने पर भी ज्ञायक तो सदा ज्ञायकरूप ही एकरूप ही रहा है। अनादि से ज्ञायक तो ज्ञायकभाव से ही रहा है; किन्तु मिथ्यात्व के कारण अन्यथा मानने में आ रहा है, इसलिए उस मिथ्यात्व को मूल से उखाड़कर स्वभाव से ही ज्ञायक ऐसे आत्मतत्त्व के ज्ञानपूर्वक शुद्धात्मा में प्रवर्तन के सिवाय अन्य कुछ करने योग्य नहीं है। 174

- द्रव्यदृष्टि जिनेश्वर, पृष्ठ -40

वीतराग-विज्ञान

वीतराग-विज्ञान ही, तीन लोक में सार।
वीतराग-विज्ञान का , घर-घर होय प्रसार।।

वर्ष : 33 (वीर नि. संवत् - 2541) 377 अंक : 5

आतम जानो रे भाई !...

आतम जानो रे भाई !
जैसी उज्ज्वल आरसी रे, तैसी आतम जोत।
काया-करमनसों जुदी रे, सबको करै उदोत।।
आतम जानो रे भाई !... ।।१।।
शयन दशा जागृत दशा रे, दोनों विकलप रूप।
निरविकलप शुद्धातमा रे, चिदानन्द चिद्रूप।।
आतम जानो रे भाई !... ।।२।।
तन बचसेती भिन्न कर रे, मनसों निज लव लाय।
आप आप जब अनुभवै रे, तहां न मन वच काय।।
आतम जानो रे भाई !... ।।३।।
छहौं दरब नव तत्त्वतैं रे, न्यारो आतम राम।
'द्यानत' जे अनुभव करैं रे, ते पावैं शिवधाम।।
आतम जानो रे भाई !... ।।४।।

- कविवर पण्डित द्यानतरायजी

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी की 125वीं जन्मजयन्ती के अवसर पर उनके प्रवचनों में से महत्वपूर्ण 125 अंशों को पाठकों के लाभार्थ यहाँ क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है।

(80) भाई ! यदि तुझे आत्मा की शान्ति पाना हो, अतीन्द्रिय आनन्द प्राप्त करना हो, दु:ख को दूर करना हो तो अपने आत्मज्ञान का उद्यम कर !! एक मात्र आत्मज्ञान ही शान्ति और आनन्द का उपाय है। इसी उपाय से दु:ख टलता है, अन्य किसी उपाय से नहीं। **– आत्मधर्म : अप्रैल 1983, पृष्ठ 8**

(81) जो रुपये-पैसे आदि की आशा से वीतराग भगवान की भक्ति करता है, वह व्यवहार से भी भगवान का भक्त नहीं है। यदि कोई लौकिक आशा से सच्चे देव-गुरु को मानता हो और कुदेवादि को नहीं मानता हो, तो भी वह पापी है। उसका गृहीत मिथ्यात्व भी छूटा हुआ नहीं कहा जा सकता। **– आत्मधर्म : मई 1983, पृष्ठ 29**

(82) भगवान ! एक बार सुन तो सही ! तू इन स्त्री-पुरुष आदि सभी भेदों को विस्मरण कर दे और अनादि से जो विस्मृत है – ऐसे निज ज्ञान-दर्शनस्वरूप का स्मरण कर ! दृष्टि कर !! अनादि से इन्हें तू भूले हुए है, इसीलिए रागादि अशुद्धोपयोग से कर्म को बाँधता है। अत: अशुद्धोपयोग अनादि का है, उसका निमित्त कर्म अनादि का है और जो अनादि से विस्मृत है – ऐसी त्रिकाली एकरूप वस्तु भी अनादि की ही है। भाई ! यह मनुष्य अवतार मिला है, भव के अभाव करने का यह समय आया है, संसार की मान-प्रतिष्ठा और वैभवादि में यह भव चला जाय – यह तुझे क्यों रुचता है ? जाग रे जाग बापू! अब तो जाग ! **– आत्मधर्म : जून 1983, पृष्ठ 18**

(83) भाई ! यह जन्म-मरण का दु:ख व चौरासी का चक्कर राग की एकता बुद्धि के कारण ही हो रहा है। उस राग से भेदज्ञान होने पर सम्यग्दर्शन प्रगट होते ही जन्म-मरण के समस्त दु:खों से छुटकारा मिल जाता है। मनुष्य तो क्या तिर्यञ्च भी भेदज्ञान करके सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है। भले ही सात तत्त्वों के नाम याद न हों, तथापि आत्मा के स्वभाव का भान हो जाता है, आत्मानुभव करने पर उसे ही अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद

आता है, उसकी भी वह दशा संवर है तथा 'जिसके आश्रय से अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया, वह चैतन्य स्वभावमय जीव है' – ऐसा उसको भावभासन होता है।

– आत्मधर्म : जुलाई 1983, पृष्ठ 11

(84) हे जीव ! तू मरण का समय आने से पहले ही चेत जा ! सावधान हो जा !! नित्यशरणभूत तथा विपत्ति के समय में विशेष शरणभूत शुद्धात्मद्रव्य के अनुभव का उद्यम कर !!! **– वीतराग-विज्ञान : अगस्त 1983, पृष्ठ 22**

(85) मस्तक को काटनेवाला, कण्ठ को छेदनेवाला शत्रु भी अपना जितना अहित नहीं करता, उतना अहित विपरीत अभिप्राय करता है। अहो ! जगत को अपने विपरीत अभिप्राय की भयानकता भासती ही नहीं है।

– वीतराग-विज्ञान : सितम्बर 1983, पृष्ठ 20

(86) अज्ञानी जीव दूसरे के पास जाकर कहता है कि 'मुझे क्षमा करो, मेरे अपराध को क्षमा करो'; किन्तु अनादि अज्ञान से अपने चैतन्यस्वभाव को विकारी मानकर उसका अनादर किया है, उसकी क्षमा चैतन्य के पास से क्या कभी माँगी है कि हे चैतन्य ! अनादि अज्ञान से तुझे विकारी मानकर मैंने तेरा असीम अनादर किया है, अब शुद्धात्मा का भान करके उस अनादर के अपराध का प्रतिक्रमण करता हूँ; इसलिए मुझे क्षमा करना। **– वीतराग-विज्ञान : अक्टूबर 1983, पृष्ठ 15**

(87) ये श्वेताम्बर संस्कारवाले हैं न ! इन्हें अपनी दिगम्बर परम्परा का विवेक नहीं है। अपनी दिगम्बर परम्परा में तो वीतराग सर्वज्ञदेव, वीतरागतापोषक शास्त्र और नग्न दिगम्बर वीतरागी भावलिंगी मुनिराजों को ही अर्घ चढाया जाता है। **–वीतराग-विज्ञान : नव.1983, पृष्ठ 3**

(88) हे भाई ! अब तो स्वयं सत्य समझकर अपना हित कर लेने में ही सार है। अज्ञानी पुकार करें तो करो, परन्तु उससे कोई वस्तु का स्वरूप तो फिरेगा नहीं। वस्तुस्वरूप न समझकर जो विरोध करते हैं, उनके ऊपर ज्ञानी को करुणा आती है। **– वीतराग-विज्ञान : दिसम्बर 1983, पृष्ठ 16**

गुरुदेवश्री की स्मृति दिवस के अवसर पर

मार्गशीर्ष कृष्ण सप्तमी, 28 नवम्बर 1980 सायंकाल 7.10 बजे आत्मनिमग्न दशा में आध्यात्मिक सत्पुरुष गुरुदेवश्री श्रीकानजीस्वामी ने देह का परित्याग किया। उनके चिर वियोग के प्रसंग पर आज से 34 वर्ष पूर्व उनके प्रिय शिष्य डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल द्वारा व्यक्त किये गये हृदयोद्‌गार को हम यहाँ पाठकों के लाभार्थ प्रस्तुत कर रहे हैं। – सह-सम्पादक

अब क्या ?...

काल ने हम पर यहाँ तक प्रहार किया कि कुछ दिन पूर्व हमसे पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी छीनी तथा अब दर्शन भी छीन लिए; परन्तु अब किसी की ताकत नहीं है कि उनकी भक्ति-मूर्ति जो हमारे सबके हृदय में बस गई है उसे छीन लेवे अर्थात् उनके बताये तत्त्व को हमसे कोई नहीं छीन सकता।

पूज्य गुरुदेवश्री ने हमें अध्यात्म तत्त्व ही नहीं दिया, बल्कि उन्होंने सारे देश तथा समाज में हम लोगों को एक सूत्र में संगठित भी किया है। उन्होंने सामाजिक क्रांति भी की है। जातिवाद, भाषावाद, प्रान्तवाद आदि सभी वादों को उन्होंने तोड़ा है। जैन समाज के जितने भेद थे उनको तोड़ा है। श्वेताम्बर, दिगम्बर को एक किया है। खण्डेलवाल, पोरवाल, परवार आदि समस्त जातिगत भेदों को तोड़कर सबको एक साथ बैठाया है। जैसे तीर्थंकर के समवशरण में शेर और हिरण एक घाट पर पानी पीते हैं; उसी प्रकार हम भी जातिगत तथा भाषागत भेदभाव को भूलकर एकमात्र मुमुक्षु की हैसियत से एकसाथ बैठे, एक हो गये। इसप्रकार उन्होंने जातिगत भेदभावों को मिटाने में भी बहुत बड़ा योगदान दिया है।

गुरुदेवश्री ने लाखों आत्मार्थियों को घड़े जैसा गढा है। जिसप्रकार कुम्हार कच्ची मिट्टी से घड़े को गढता है, उसी प्रकार उन्होंने हमें गढा है। कुम्हार घड़े को गढते समय ऊपर से धीमी-धीमी थाप मारता है तो अन्दर से हाथ का सहारा भी दिये रहता है, तब बनता है घड़ा। इसी प्रकार भटकते हुए आत्मार्थियों को उन्होंने मीठी फटकार और अन्दर से सहारा दिया, न उन्हें विचलित ही होने दिया और न प्रमादी ही। धनिकों को अभिमान न हो जाए – इस

भावना से धन को धूल बताने वाली फटकार लाखों लोगों ने उनके मुख से सुनी है तथा वह भटक न जाए इस भावना से की जाने वाली मृदुल अनुशंसा से भी सब परिचित है। क्षयोपशम ज्ञान के अभिमान में भी कोई रुक न जाय – तदर्थ उसकी असलियत से भी अब कौन परिचित करायेगा ? तत्त्वप्रचार की दिशा में किए गए प्रयत्नों को भी अब कौन सराहेगा, कौन पीठ थपथपाएगा; मीन-मेख निकालने वाले तो बहुत मिलेंगे, पर सन्मार्ग दिखाकर प्रोत्साहित कौन करेगा ?

हजारों गालियाँ देने वाले विरोधियों के प्रति भी अब यह शब्द कौन कहेगा कि ''भाई! वह भी तो भगवान है, पर्याय में भूल है तो क्या हुआ, वह तो निकल जाने वाली है।'' अब यह प्रेरणा कौन देगा कि –''आलोचना करनेवालों की ओर नहीं, अपनी ओर देखो।''

अब किसकी दिनचर्या को देखकर लोग अपनी घड़ियाँ मिलायेंगे ? अब हम लोग किससे निश्चय की महिमा सुनेंगे और किसके व्यवहार को अपना आदर्श बनायेंगे ?

अब कौन गायेगा निरन्तर आत्मा के गीत; कौन पहुँचाएगा अत्यल्प मूल्य में जिनवाणी घर-घर ? अब कौन....?

सूरज डूब गया। पर अब क्या हो सकता है ? वह तो डूब ही गया। अन्धकार, घना अन्धकार बढता जा रहा है, वह तो बढता ही जाएगा; पर हम सब अब क्यों सो रहे हैं, क्यों रो रहे हैं ? यह सोने का समय नहीं, यह रोने का भी समय नहीं है। जागो, उठो ! जिसप्रकार लौकिक सूर्य जब डूब जाता है तब हम हार नहीं मानते और रोने भी नहीं बैठते, चुप होकर भी नहीं बैठते, बल्कि जिसमें जितनी हैसियत होती है उतना प्रकाश अपने घर में करते हैं। अर्थात् कोई ट्यूबलाईट जलाता है, कोई बल्ब जलाता है, किसी के पास कुछ नहीं हो तो एक दीपक या मोमबत्ती तो जलाता ही है और इसप्रकार बारह घंटे की अंधियारी रात्रि को दूर करते हैं, फिर सुबह सूर्य जगमगाता है। उसीप्रकार गुरुदेवरूपी यह आध्यात्मिक सूर्य अस्त हो गया है; तथापि हमें हाथ पर हाथ धरकर बैठने की आवश्यकता नहीं है या रोने-धोने की भी आवश्यकता नहीं है। अब हमें अपने-अपने घर में दीपक जलाने की आवश्यकता है। जिसने जितना गुरुदेवश्री से पाया हो उसका ही घोलन और जिनवाणी का अध्ययन-मनन करना चाहिए और अध्यात्म का प्रकाश कायम रखना चाहिए।

औरों के समान दो आँसू बहाकर, दो शब्द श्रद्धांजलि के समर्पित कर अपने कर्तव्य की इतिश्री मत समझ लेना। अब हम सब मिलकर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा आरंभ किये गये इस मिशन को आगे बढायेंगे, तभी गुरुदेवश्री के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि समर्पित कर सकेंगे। ●

सम्पादकीय

तत्त्वार्थमणिप्रदीप

(आचार्य उमास्वामी कृत तत्त्वार्थसूत्र की टीका)

(गतांक से आगे....)

नारकी जीवों की आयु

नरकों के भयंकर दु:खों को जानकर यह प्रश्न होना स्वाभाविक ही है कि नारकियों को ये दु:ख कितने काल तक भोगना पड़ते हैं।

इस प्रश्न के उत्तर में अगले सूत्र की रचना हुई है, जो इसप्रकार है –

तेष्वेकत्रिसप्तदशसप्तदशद्वाविंशतित्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा सत्त्वानां परा स्थितिः ।।६।।

उन नरकों में नारकी जीवों के रहने की उत्कृष्ट आयु क्रम से एक सागर, तीन सागर, सात सागर, दस सागर, सत्रह सागर, बाईस सागर और तैंतीस सागर है।

तात्पर्य यह है कि नारकी जीवों की उत्कृष्ट आयु पहले नरक में एक सागर, दूसरे नरक में तीन सागर, तीसरे नरक में सात सागर, चौथे नरक में दस सागर, पाँचवें नरक में सत्रह सागर, छठवें नरक में बाईस सागर और सातवें नरक में तैंतीस सागर है।

जिसप्रकार सागर अर्थात् समुद्र में अगाध और अपार जल होता है; उसीप्रकार काल के मापरूप सागर में भी बहुत लम्बा काल होता है।

सागर का स्वरूप आगम में इसप्रकार स्पष्ट किया गया है –

दो हजार कोस गहरे तथा इतने ही चौड़े गोलाकार गड्ढे को, कैंची से जिसके दो टुकड़े न हो सकें – ऐसे तथा एक से सात दिन की उम्र के उत्तम भोगभूमि के मेंढे के बालों से भर दिया जाये। फिर उसमें से सौ-सौ वर्ष के अंतर से एक-एक बाल का टुकड़ा निकाला जाये।

जितने काल में उन सब बालों को निकाल दिया जाये, उसे 'व्यवहार पल्य' कहते हैं; व्यवहारपल्य से असंख्यातगुने समय को 'उद्धारपल्य' और उद्धारपल्य से असंख्यातगुने काल को 'अद्धापल्य' कहते हैं। दस कोड़ाकोड़ी अद्धापल्यों का एक सागर होता है।

इसप्रकार ये नारकी जीव बहुत लम्बे काल तक नरक की यातना को भोगते हैं।।६।।

नरकों के संबंध में कुछ विशेष जानकारी

इन नरकों में रहनेवाले सभी नारकी जीव परस्पर में अत्यधिक मारकाट करते रहते हैं; परन्तु आयुकर्म की समाप्ति तक चाहकर भी मर नहीं पाते।

चारों गतियों में नरकगति ही एक ऐसी गति है, जहाँ के जीव मरना चाहते हैं। अन्य गतियों में कोई भी जीव कितने ही कष्ट में क्यों न हो; पर वह मरना नहीं चाहता। अंत समय तक मृत्यु से बचने का ही प्रयास करता रहता है; क्योंकि जो जीव जैसी भी स्थिति में पहुँच गया है, वह वहीं रम जाता है। उसे बदलना नहीं चाहता।

नरक एक ऐसी गति है, जहाँ कोई भी जीव रमता नहीं है, रमना नहीं चाहता; इसलिए नरक की व्याख्या इसप्रकार की गई है कि **''न रता इति नारका''** जहाँ जीव रमे नहीं, उस स्थान को नरक कहते हैं।

यहाँ एक प्रश्न सहज ही उत्पन्न होता है कि ऐसा कोई स्थान अभी तक देखने में नहीं आता; अत: नरकों के अस्तित्व पर भरोसा नहीं होता।

इस प्रश्न का तर्कसंगत उत्तर यह है कि यदि कोई व्यक्ति एक व्यक्ति की हत्या करता है तो उसे एक बार फांसी पर लटकाया जाता है; यदि वही जीव हजारों लाखों जीवों का घात करे तो उसकी सजा में भी एक बार ही तो फांसी पर लटकाया जाता है; क्योंकि एक बार मर जाने पर उसे दुबारा फांसी पर लटकाना संभव नहीं है।

पर यह न्यायसंगत तो नहीं है। यह बात न्यायसंगत कैसे हो सकती है कि एक जीव को मारने की भी वही सजा और अनेकों जीवों को मारने की भी वही सजा।

अत: कोई न कोई ऐसा स्थान अवश्य होना चाहिए कि जहाँ उसे प्रतिदिन मारणान्तिक पीड़ा प्राप्त हो, मरण तुल्य कष्ट प्राप्त हो, पर वह मर न सके, मरे नहीं।

यही कारण है कि ऐसे महापाप करनेवाले जीव नरक में जाते हैं और वहाँ सागरों पर्यन्त रहकर निरन्तर मारणान्तिक दु:ख भोगते हैं।

हाँ, पर एक बात अवश्य है कि आयु की समाप्ति पर जब नारकी जीवों का मरण होता है, तब वे मरकर दुबारा नरक नहीं जाते, देव भी नहीं होते या तो वे तिर्यंचगति में जन्म लेते हैं या मनुष्यगति में।

यह भी ध्यान रखने योग्य है कि नरक से मनुष्य या तिर्यंचगति में आनेवाले जीव नियम से सैनी पंचेन्द्रिय ही होते हैं; जबकि **देवगति से आनेवाले एकेन्द्रिय तक हो**

जाते हैं।

इससे एक बात सहज ही सिद्ध होती है कि जिसप्रकार आराम से सो जानेवाले यात्रियों का सामान चोरी हो जाता है, पर खड़े-खड़े यात्रा करनेवालों का सामान चोरी नहीं होता; उसीप्रकार **भोगों में निरत रहनेवाले सुप्त जीव अनुकूलता में ज्ञानधन को गंवा देते हैं; किन्तु पीड़ा में ही सही, पर निरन्तर सजग रहनेवाले ज्ञानधन को नहीं गंवाते।**

सभी नारकी नियम से सैनी पंचेन्द्रिय ही होते हैं और सभी को नियम से भव प्रत्यय नाम का अवधिज्ञान भी होता है; पर वे अपने इस ज्ञान का दुरुपयोग ही करते हैं और उसके माध्यम से अनन्त दु:ख उठाते हैं। माँ और बेटा – दोनों नरक में हों तो बेटा अवधिज्ञान से यह जान लेता है कि पिछले भव में यह मेरी माँ थी और प्रतिदिन मेरी आँख फोड़ने का प्रयास करती थी। यदि में प्रयत्नपूर्वक अपनी आँख न बचा पाता तो यह तो मुझे अंधा ही कर देती।

माँ उसकी आँख की सुरक्षा के लिए काजल लगाती थी, पर उसके ज्ञान में यही आता कि ये मेरी आँख फोड़ने का प्रयास करती थी।

हिंसादि महापापों के साथ-साथ मिथ्यात्व नामक महापाप भी नरकगति का कारण है; क्योंकि यह तो सर्वविदित ही है कि सम्यग्दृष्टि जीव मरकर नरक नहीं जाते।

अत: **जिन्हें नरक के भयंकर दु:खों से बचना हो, वे अपने आत्मा को जानकर-पहिचानकर, स्वयं में अपनापन स्थापित कर सम्यग्दर्शन प्राप्त करें और आत्मा में ही जमकर, रमकर चारित्रवंत होकर मुक्तिमार्ग में आगे बढ़े।**

इसप्रकार अधोलोक का वर्णन समाप्त होता है।

मध्यलोक

अधोलोक के वर्णन के उपरान्त अब मध्यलोक की चर्चा प्रसंग प्राप्त है। **तीन लोक के बीच में होने से इसे मध्यलोक कहते हैं और यह तिरछा बसा है; इसलिए इसे तिर्यक् लोक भी कहा जाता है।**

जिसप्रकार नरक एक-दूसरे के नीचे-नीचे हैं; उसप्रकार द्वीप और समुद्र एक-दूसरे के नीचे-नीचे नहीं, बल्कि **एक-दूसरे को घेरे हुए अगल-बगल में तिरछे बसे हुए हैं।**

मध्यलोक में स्थित द्वीप समुद्रों की चर्चा करनेवाले इस अध्याय के सातवें, आठवें और नौवें सूत्र इसप्रकार हैं –

जम्बूद्वीपलवणोदादय: शुभनामानो द्वीपसमुद्रा: ।।७।।

द्विर्द्विर्विष्कम्भा: पूर्वपूर्वपरिक्षेपिणो वलयाकृतय: ।।८।।

तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीप: ।।९।।

शुभ हैं नाम जिनके, ऐसे जम्बूद्वीप आदि द्वीप और लवणसमुद्र आदि समुद्र मध्यलोक में हैं।

ये दूने-दूने विस्तारवाले द्वीप और समुद्र अपने से पहलेवाले को घेरे हुए चूड़ी के आकार के समान वलयाकृत हैं।

उन द्वीप समुद्रों के मध्य में, मेरु है नाभि जिसकी, ऐसा एक लाख योजन विस्तारवाला जम्बूद्वीप नामक द्वीप है।

तात्पर्य यह है कि ये द्वीप और समुद्र ग्राम और नगरों के समान नहीं बने हैं, बल्कि सबसे बीच में एक लाख योजन के विस्तारवाला **जम्बूद्वीप** है। उसे चारों ओर से घेरे हुए उससे दूने विस्तारवाला **लवण समुद्र** है, उस लवण समुद्र को घेरे हुए उससे दूने विस्तारवाला **धातकीखण्ड द्वीप** है।

उस धातकीखण्ड द्वीप को घेरे हुए उससे दूने विस्तारवाला **कालोदधि** नाम का समुद्र है।

उस कालोदधि समुद्र को घेरे हुए उससे दूने विस्तारवाला **पुष्करवर द्वीप** है, उस पुष्करवर द्वीप को घेरे हुए उससे दूने विस्तार वाला **पुष्करवर समुद्र** है।

उस पुष्करवर समुद्र को घेरे हुए उससे दूने विस्तारवाला **वारुणीवर द्वीप** है, उस वारुणीवर द्वीप को घेरे हुए उससे दूने विस्तारवाला **वारुणीवर समुद्र** है।

उस वारुणीवर समुद्र को घेरे हुए उससे दूने विस्तारवाला **क्षीरवर द्वीप** है, उस क्षीरवर द्वीप को घेरे हुए उससे दूने विस्तारवाला **क्षीरवर समुद्र** है।

उस क्षीरवर समुद्र को घेरे हुए उससे दूने विस्तारवाला **घृतवर द्वीप** है, उस घृतवर द्वीप को घेरे हुए उससे दूने विस्तारवाला **घृतवर समुद्र** है।

उस घृतवर समुद्र को घेरे हुए उससे दूने विस्तारवाला **इक्षुवर द्वीप** है, उस इक्षुवर द्वीप को घेरे हुए उससे दूने विस्तारवाला **इक्षुवर समुद्र** है।

उस इक्षुवर समुद्र को घेरे हुए उससे दूने विस्तारवाला **नंदीश्वर द्वीप** है, उस नंदीश्वर द्वीप को घेरे हुए उससे दूने विस्तारवाला **नंदीश्वर समुद्र** है।

उस नंदीश्वर समुद्र को घेरे हुए उससे दूने विस्तारवाला **अरुणवर द्वीप** है, उस

अरुणवर द्वीप को घेरे हुए उससे दूने विस्तारवाला **अरुणवर समुद्र** है।

उस अरुणवर समुद्र को घेरे हुए उससे दूने विस्तारवाला **अरुणाभाष द्वीप** है, उस अरुणाभाष द्वीप को घेरे हुए उससे दूने विस्तारवाला **अरुणाभाष समुद्र** है।

उस अरुणाभाष समुद्र को घेरे हुए उससे दूने विस्तारवाला **कुण्डलवर द्वीप** है, उस कुण्डलवर द्वीप को घेरे हुए उससे दूने विस्तारवाला **कुण्डलवर समुद्र** है।

उस कुण्डलवर समुद्र को घेरे हुए उससे दूने विस्तारवाला **शंखवर द्वीप** है। उस शंखवर द्वीप को घेरे हुए उससे दूने विस्तारवाला **शंखवर समुद्र** है।

उस शंखवर समुद्र को घेरे हुए उससे दूने विस्तारवाला **रुचकवर द्वीप** है। उस रुचकवर द्वीप को घेरे हुए उससे दूने विस्तारवाला **रुचकवर समुद्र** है।

इसप्रकार ये तेरह द्वीप और तेरह समुद्र हैं।

इसीप्रकार आगे-आगे जिस नाम का द्वीप है, उसी नाम का उससे दूने विस्तारवाला समुद्र है। इसीप्रकार पीछेवाले को घेरे हुए उससे दूने विस्तारवाले असंख्यात द्वीप समुद्र हैं।

सबसे अंत में **स्वयंभूरमण द्वीप** एवं **स्वयंभूरमण समुद्र** है।

आठवें नंदीश्वर द्वीप में बावन अकृत्रिम चैत्यालय हैं, जिनकी वंदना करने अष्टाह्निका पर्व में देवगण जाते हैं।

इसके अतिरिक्त ग्यारहवें **कुण्डलवर द्वीप** में तथा तेरहवें **रुचकवर द्वीप** में भी ४-४ अकृत्रिम चैत्यालय हैं। इन सभी की पूजन हम सब तेरहद्वीप विधान अथवा इन्द्रध्वज विधान में करते हैं।

चौथे से सातवें, नौवें-दसवें एवं बारहवें द्वीपों में अकृत्रिम चैत्यालय नहीं हैं।

पाँचवें समुद्र क्षीरसागर का जल निर्जन्तुक एवं दूध के समान सफेद और निर्मल होता है। तीर्थंकरों का जन्माभिषेक उसी निर्जन्तुक पवित्र जल से किया जाता है।

अंतिम स्वयंभूरमण समुद्र में एक हजार योजन के विस्तारवाला महामत्स्य होता है, जिसके कान में तंदुल के आकार का एक मत्स्य होता है, जो उनके कान का मैल खाकर जिन्दा रहता है।

उक्त तंदुल मत्स्य का उदाहरण शास्त्रों में परिणामों की मलिनता के लिए दिया जाता है।

कहा जाता है कि वह हजार योजन वाला महामत्स्य अपने विशाल मुख को

खोले हुए समुद्र में छह माह तक सोता रहता है, उसके मुख में हजारों छोटी-छोटी मछलियाँ आती-जाती रहती हैं। उन्हें देखकर यह तंदुल मत्स्य सोचता है कि यदि ये मछलियाँ मेरे मुख में आती तो मैं एक को भी नहीं छोड़ता, सभी को निगल जाता; पर यह मूर्ख अपने मुँह में आई मछलियों को भी वापिस चला जाने देता है।

अपने इन दुष्ट परिणामों के कारण एक भी जीव का घात नहीं कर पाने पर भी वह तंदुल मत्स्य मरकर नरक में जाता है।

यहाँ एक प्रश्न संभव है कि जब द्वीप-समुद्र असंख्यात हैं तो आपने मात्र तेरह द्वीपों के ही नाम क्यों गिनाये ?

उत्तर – असंख्यात नाम तो गिने नहीं जा सकते, उनके नाम भी आगम में प्राप्त नहीं होते; हम कैसे गिनाते ? **मात्र सोलह द्वीप समुद्रों के नाम आगम में प्राप्त होते हैं।**

दूसरी बात यह भी तो है कि यदि आगम में प्राप्त भी होते और हम गिना भी देते तो क्या आप उन्हें याद रखते, ध्यान से पढ़ते; तेरह नामों में ही लोगों को कंटाला छूटने लगता है। तेरह नाम भी कौन याद रखता है, किस-किसको याद हैं ?

प्रश्न – यदि ऐसी बात है तो आपने तेरह का ही आँकड़ा क्यों चुना, दस ही गिनाते या फिर सोलह गिना देते।

उत्तर – तुम ठीक कहते हो, पर बात यह है कि **तेरहवें द्वीप तक अकृत्रिम चैत्यालय हैं,** उनके नाम न केवल आगम में अपितु पूजन-विधान में भी आते रहते हैं। इसलिए हमने यहाँ तेरह द्वीप-समुद्रों के नाम गिनाये हैं।

प्रश्न – फिर अन्तिम द्वीप-समुद्र का नाम क्यों गिनाया ?

उत्तर – एक तो उसमें रहनेवाले तन्दुल मत्स्य की चर्चा अभीष्ट थी, दूसरे कहते हैं कि अन्तिम समुद्र में असंख्यात तिर्यंच पंचम गुणस्थानवर्ती विद्यमान हैं। उनकी उपेक्षा भी हमसे संभव नहीं हुई।।७-९।।

जम्बूद्वीप

जम्बूद्वीप और जम्बूद्वीप के बाहर के द्वीप-समुद्रों की चर्चा हुई। अत: अब यह प्रश्न सहज ही उपस्थित होता है कि **जम्बूद्वीप के भीतर क्या है ?** इस प्रश्न के उत्तर में आगामी सूत्रों का जन्म हुआ है, जो इसप्रकार हैं –

भरतहैमवतहरिविदेहरम्यकहैरण्यवतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि।।१०।।

तद्विभाजिनःपूर्वापरायता हिमवन्महाहिमवन्निषधनीलरुक्मिशिखरिणो

वर्षधरपर्वताः ।।११।।

हेमार्जुनतपनीयवैडूर्यरजतहेममयाः ।।१२।।

मणिविचित्रपार्श्वा उपरिमूले च तुल्यविस्ताराः ।।१३।।

भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत – ये सात वर्ष हैं, जिन्हें क्षेत्र भी कहते हैं।

इन क्षेत्रों को विभाजित करनेवाले और पूर्व-पश्चिम तक लम्बे हिमवन, महाहिमवन, निषध, नील, रुक्मि और शिखरिण – ये छह वर्षधर अर्थात् वर्षों (क्षेत्रों) को धारण करनेवाले, विभाजित करनेवाले पर्वत हैं।

ये छहों पर्वत; क्रम से सोना, चाँदी, तपाया हुआ सोना, वैडूर्यमणि, चाँदी और सोना – इन मय हैं, इनके समान रंगवाले हैं।

इनके पार्श्व (अगल-बगल) भाग अनेक प्रकार की विचित्र मणियों से जड़े हुए हैं; और ऊपर, मध्य एवं मूल में एक से विस्तार (चौड़ाई) वाले हैं।

तात्पर्य यह है कि ये पर्वत, पर्वतों जैसे ऊबड़-खाबड़ नहीं हैं, अपितु दीवालों जैसे ऊपर-नीचे और मध्य में एकसी चौड़ाई वाले हैं और अनेक प्रकार की रंगीन मणियों से जड़े हुए हैं, सुशोभित हैं।

जम्बू नाम के वृक्ष के कारण पड़ा है नाम जिसका, ऐसा यह प्रथम द्वीप जम्बूद्वीप चारों ओर से लवणसमुद्र से घिरा हुआ गोलाकार चूड़ी के आकार जैसा एक द्वीप है। इस द्वीप में पूरब से लेकर पश्चिम दिशा तक फैले हुए हिमवन आदि छह पर्वत हैं, जिनके कारण ये द्वीप भरतादि सात क्षेत्रों में विभाजित हो गया है।

ये पर्वत विभिन्न प्रकार की मणियों से जड़े हुए अत्यंत मजबूत सुव्यवस्थित दीवालों जैसे नीचे से ऊपर तक एकसी चौड़ाईवाले हैं।

उक्त जम्बू नाम का वृक्ष वस्तुतः वृक्ष नहीं है, वनस्पतिकाय नहीं है। यह तो वृक्ष जैसे आकार की पृथिवी है, पृथिवीकाय है ।।१०-१३।।

सरोवर, कमल और देवियाँ

उक्त हिमवन आदि पर्वतों पर स्थित सरोवर और कमल तथा उनकी लंबाई, चौड़ाई और गहराई एवं उन कमलों पर रहनेवाली देवियाँ – इन सब बातों को स्पष्ट करनेवाले आगामी सूत्र इसप्रकार हैं –

पद्ममहापद्मतिगिंछकेसरिमहापुण्डरीकपुण्डरीका ह्रदास्तेषामुपरि ।।१४।।

प्रथमो योजनसहस्रायामस्तदर्द्धविष्कम्भो ह्रदः ।।१५।।

दशयोजनावगाहः ।।१६।।

तन्मध्ये योजनं पुष्करम् ।।१७।।

तद्द्विगुणद्विगुणा ह्रदाः पुष्कराणि च ।।१८।।

तन्निवासिन्यो देव्यः श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयः ससामानिकपारिषत्काः ।।१९।।

हिमवन आदि पर्वतों के ऊपर क्रमशः पद्म, महापद्म, तिगिंछ, केशरी, महापुण्डरीक और पुण्डरीक नाम के सरोवर (तालाब) हैं।

पहला पद्म सरोवर एक हजार योजन लम्बा और लम्बाई से आधा अर्थात् पाँच सौ योजन चौड़ा है।

पहला सरोवर दश योजन अवगाह (गहराई) वाला है।

इसके बीच में एक योजन का कमल है।

आगे के सरोवर और कमल दूने-दूने विस्तारवाले हैं।

इन कमलों में क्रमशः श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी – ये छह देवियाँ सामानिक और पारिषद देवों के साथ निवास करती हैं तथा इनकी आयु एक पल्योपम है।

इन हिमवन, महाहिमवन आदि पर्वतों पर क्रमशः पद्म, महापद्म आदि सरोवर (तालाब) हैं। पद्म नामक प्रथम सरोवर (तालाब), पूरब से पश्चिम तक एक हजार योजन लंबा और उत्तर से दक्षिण तक पाँच सौ योजन चौड़ा है। इसका तल भाग वज्र से बना हुआ है और उसके किनारे अनेक प्रकार की मणियों और सोने से चित्र-विचित्र हैं, विभिन्न रंगों वाले हैं।

इस पद्म सरोवर की गहराई दस योजन है और इसमें एक योजन का कमल बना हुआ है। यह कमल वनस्पतिकाय का नहीं है; किन्तु यह कमल के आकार की पृथिवी ही है। इसके आगे तिगिंछ सरोवर तक के सरोवर और कमल लंबाई- चौड़ाई आदि की अपेक्षा दूने-दूने विस्तारवाले हैं। केशरी नामक सरोवर की लंबाई, चौड़ाई और गहराई तिगिंछ सरोवर के समान ही है।

महापुण्डरीक सरोवर की लंबाई, चौड़ाई और गहराई केशरी से आधी है और पुण्डरीक सरोवर की लंबाई, चौड़ाई और गहराई महापुण्डरीक से आधी है।

इसप्रकार पहला पद्म सरोवर पूरब से पश्चिम तक एक हजार योजन लम्बा, उत्तर से दक्षिण तक पाँच सौ योजन चौड़ा है एवं उसकी गहराई दश योजन है और

उसमें एक योजन लंबा-चौड़ा कमल है।

दूसरा महापद्म सरोवर दो हजार योजन लम्बा, एक हजार योजन चौड़ा है एवं उसकी गहराई बीस योजन है और उसमें दो योजन लंबा- चौड़ा कमल है।

तीसरा तिगिंछ सरोवर चार हजार योजन लम्बा और दो हजार योजन चौड़ा है एवं उसकी गहराई चालीस योजन है और उसमें चार योजन लंबा-चौड़ा कमल है।

चौथा केशरी सरोवर चार हजार योजन लम्बा और दो हजार योजन चौड़ा है एवं उसकी गहराई चालीस योजन है और उसमें चार योजन लंबा-चौड़ा कमल है।

पाँचवाँ महापुण्डरीक सरोवर दो हजार योजन लम्बा और एक हजार योजन चौड़ा है एवं उसकी गहराई बीस योजन है और उसमें दो योजन लंबा-चौड़ा कमल है।

छठवाँ पुण्डरीक सरोवर एक हजार योजन लम्बा और पाँच सौ योजन चौड़ा एवं उसकी गहराई दस योजन है और उसमें एक योजन लंबा-चौड़ा कमल है।

तात्पर्य यह है कि पद्म और पुण्डरीक तालाब समान आकारवाले हैं। इसीप्रकार महापद्म और महापुण्डरीक की स्थिति तथा तिगिंछ और केशरी सरोवरों की स्थिति भी समान ही है। इसप्रकार सुमेरु पर्वत से उत्तर भाग की सम्पूर्ण रचना दक्षिण भाग के समान ही लम्बी-चौड़ी है।

उक्त पद्म, महापद्म, तिगिंछ आदि सरोवरों के कमलों में एक पल्य की स्थितिवाली श्री, ह्री, धृति आदि देवियाँ सामानिक और पारिषद देवों के साथ रहती हैं।

इसप्रकार पद्म नामक सरोवर के कमल में **श्री** नामक देवी, महापद्म नामक सरोवर के कमल में **ह्री** नामक देवी, तिगिंछ नामक सरोवर के कमल में **धृति** नामक देवी, केशरी नामक सरोवर के कमल में **कीर्ति** नामक देवी, महापुण्डरीक नामक सरोवर के कमल में **बुद्धि** नामक देवी एवं पुण्डरीक नामक सरोवर के कमल में **लक्ष्मी** नामक देवी रहती है।

सामानिक और पारिषद देवों की विशेष चर्चा चौथे अध्याय में कल्पोपन्न देवों के संदर्भ में होगी। इनमें श्री, ह्री, धृति – ये देवियाँ सौधर्म इन्द्र की सेवा में रहती हैं एवं कीर्ति, बुद्धि, लक्ष्मी – ये देवियाँ ईशान इन्द्र की सेवा में रहती हैं।।१४-१९।।

गंगा-सिन्धु आदि नदियाँ

हिमवन आदि पर्वतों पर स्थित पद्म आदि सरोवरों से गंगा-सिंधु आदि १४ नदियाँ निकलती हैं; जो भरत आदि सात क्षेत्रों में बहती हैं। इनकी स्थिति बतानेवाले

सूत्र इसप्रकार हैं –

गंगासिन्धुरोहिद्रोहितास्याहरिद्धरिकान्तासीतासीतोदानारीनरकान्तासुवर्ण-रूप्यकूलारक्तारक्तोदाःसरितस्तन्मध्यगाः ।।२०।।

द्वयोर्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगाः ।।२१।।

शेषास्त्वपरगाः ।।२२।।

चतुर्दशनदीसहस्रपरिवृता गंगासिन्ध्वादयो नद्यः ।।२३।।

भरत क्षेत्र में गंगा-सिंधु; हैमवत क्षेत्र में रोहित-रोहितास्या; हरिक्षेत्र में हरित-हरिकान्ता; विदेह क्षेत्र में सीता-सीतोदा; रम्यक् क्षेत्र में नारी-नरकान्ता; हैरण्यवत क्षेत्र में स्वर्णकूला-रूप्यकूला और ऐरावत क्षेत्र में रक्ता-रक्तोदा – इसप्रकार सात क्षेत्रों के बीच में चौदह नदियाँ बहती हैं।

हर एक, दो के समूह में से पहली नदी, पूर्व की ओर बहती है।

बाकी रही सात नदियाँ पश्चिम की ओर जाती हैं।

गंगा और सिन्धु नदियाँ चौदह-चौदह हजार सहायक नदियों से घिरी हुई हैं।

ये गंगा-सिन्धु आदि नदियाँ हिमवन आदि पर्वतों पर स्थित, पद्म आदि सरोवरों से निकलती हैं। पद्म नामक सरोवर से गंगा, सिन्धु और रोहितास्या; महापद्म सरोवर से रोहित और हरितकान्ता; तिगिंछ नामक सरोवर से हरित और सीतोदा; केशरी नामक सरोवर से सीता और नरकान्ता; महापुण्डरीक सरोवर से नारी और रूप्यकूला तथा पुण्डरीक नामक सरोवर से स्वर्णकूला, रक्ता और रक्तोदा नदियाँ निकलती हैं।

भरत क्षेत्र के उत्तर में हिमवन पर्वत है, पूर्व, पश्चिम तथा दक्षिण में लवण समुद्र है। भरत क्षेत्र के बीच में विजयार्ध पर्वत है। वह पूर्व-पश्चिम लम्बा है तथा पच्चीस योजन ऊँचा और पचास योजन चौड़ा है।

भूमि से दस योजन ऊपर जाने पर उस विजयार्ध पर्वत के दक्षिण तथा उत्तर में दो श्रेणियाँ हैं, **जिनमें विद्याधरों के नगर बसे हुए हैं।**

वहाँ से और दस योजन ऊपर जाने पर पर्वत के ऊपर दोनों ओर पुनः दो श्रेणियाँ हैं, **जिनमें व्यन्तर देव रहते हैं।**

वहाँ से पाँच योजन ऊपर जाने पर विजयार्ध पर्वत का शिखर तल है, **जिस पर अनेक कूट बने हुए हैं।**

इस पर्वत में दो गुफाएँ हैं, जो आर-पार हैं। हिमवन पर्वत पर स्थित पद्म

सरोवर से निकल कर गंगा-सिन्धु नदी इन्हीं गुफाओं की देहली के नीचे से निकलती हुई लवण समुद्र के दक्षिण भाग में मिलती है।

विजयार्ध पर्वत तथा इन दोनों नदियों के कारण ही भरत क्षेत्र के छह खण्ड हो गये हैं। तीन खण्ड विजयार्ध के उत्तर में हैं और तीन खण्ड दक्षिण में हैं। दक्षिण के तीन खण्डों के बीच का खण्ड आर्य खण्ड कहलाता है। शेष पाँचों म्लेच्छ खण्ड हैं।

उक्त गुफाओं में से पूर्वदिशावाली खण्डप्रपात नामक गुफा से **चक्रवर्ती उत्तर के तीनों खण्डों को जीतने जाता है और पश्चिमदिशावाली तिमिस्र नामक गुफा से लौटकर वापिस आता है।**

इसी से **इस पर्वत का नाम विजयार्ध** है; क्योंकि इस तक पहुँचने पर चक्रवर्ती की आधी विजय हो जाती है। उत्तर के तीन खण्डों के बीच के खण्ड में **वृषभाचल पर्वत है, उस पर चक्रवर्ती अपना नाम उत्कीर्ण कर देता है।**

पुराणों में चर्चा आती है कि **जब भरत चक्रवर्ती उक्त वृषभाचल पर अपना नाम लिखने गये तो वहाँ रंचमात्र स्थान खाली नहीं था।**

तात्पर्य यह है कि अभी तक भरत क्षेत्र में इतने अधिक चक्रवर्ती हो गये हैं कि भरत चक्रवर्ती को वहाँ अपना नाम लिखने को जगह नहीं मिली। **अन्ततोगत्वा भरत ने एक का नाम मिटाकर अपना नाम लिख दिया।**

भरत चक्रवर्ती को इस बात का अभिमान था कि मैं भरत क्षेत्र का पहला चक्रवर्ती हूँ; पर यह सब देखकर उनका मान गल गया और वे सोचने लगे कि जब **अगला चक्रवर्ती दिग्विजय करता हुआ यहाँ आवेगा तो वह मेरा नाम मिटाकर अपना नाम लिख देगा।**

जगह-जगह पट्टियों पर नाम लिखानेवालों को भी कुछ सोचना चाहिए।

भरत क्षेत्र की तरह ही अन्त का ऐरावत क्षेत्र भी है। उसमें भी विजयार्ध पर्वत वगैरह हैं तथा विजयार्ध पर्वत और रक्ता-रक्तोदा नदी के कारण उसके भी छह खण्ड हो गये हैं।

सब क्षेत्रों के बीच में विदेहक्षेत्र है। यह क्षेत्र निषध और नील पर्वत के मध्य स्थित है। **वहाँ मनुष्य आत्मध्यान के द्वारा कर्मों को नष्ट करके देह के बंधन से सदा छूटते रहते हैं। इसी से उसका 'विदेह' नाम पड़ा हुआ है। वहाँ हमेशा चौथे काल जैसी स्थिति ही रहती है।**

उस विदेह क्षेत्र के बीच में सुमेरु पर्वत है। सुमेरु के पूर्व दिशा वाले भाग को पूर्व विदेह और पश्चिम दिशावाले भाग को पश्चिम विदेह कहते हैं।

नील पर्वत से निकलकर सीता नदी पूर्व विदेह के मध्य से होकर बहती है और निषध पर्वत से निकलकर सीतोदा नदी पश्चिम विदेह के मध्य से होकर बहती है। इससे इन नदियों के कारण पूर्व विदेह और पश्चिम विदेह के भी दो-दो भाग हो गये हैं। इस तरह विदेह के चार भाग हैं।

प्रत्येक भागों में आठ-आठ उप विभाग हैं। यह प्रत्येक उपविभाग एक-एक स्वतंत्र देश है। **अत: विदेह क्षेत्र में ८×४=३२ देश हैं,** वे सब विदेह कहलाते हैं। इन देशों में भी छह-छह खण्ड हैं। वहाँ पर एक देश के एक-एक चक्रवर्ती होते हैं, हो सकते हैं।

सुमेरु पर्वत एक लाख चालीस योजन ऊँचा है। जिसमें एक हजार योजन तो पृथ्वी के अन्दर उसकी नींव है और निन्यानवे हजार योजन पृथ्वी के ऊपर उठा हुआ है। ऊपर चालीस योजन की चूलिका है।

उसके चारों ओर पृथ्वी पर भद्रशाल नाम का वन है। उसमें पाँचसौ योजन ऊपर जाने पर सुमेरु पर्वत के चारों ओर की कटनी पर **दूसरा नन्दन वन है।**

नन्दन वन से साढ़े बासठ हजार योजन ऊपर जाकर पर्वत के चारों ओर की कटनी पर **तीसरा सौमनस वन है।**

सौमनस वन से छत्तीस हजार योजन ऊँचाई पर पर्वत का शिखर तल है। उसके बीच में चालीस योजन ऊँची चूलिका है और चूलिका के चारों ओर पाण्डुक वन है। इस वन के चारों दिशाओं में पाण्डुक शिला, पाण्डुकम्बल शिला, रक्त शिला और रक्तकम्बल शिला नाम की चार शिलायें हैं।

उन शिलाओं पर भरत क्षेत्र के तीर्थंकरों का जन्माभिषेक पाण्डुक शिला पर, पश्चिम विदेह क्षेत्र के तीर्थंकरों का जन्माभिषेक पाण्डुकम्बल शिला पर, ऐरावत क्षेत्र के तीर्थंकरों का जन्माभिषेक रक्त शिला पर और पूर्व विदेह क्षेत्र के तीर्थंकरों का जन्माभिषेक रक्तकम्बल शिला पर होता है।

गंगा-सिन्धु और रक्ता-रक्तोदा की १४-१४ हजार सहायक नदियाँ हैं, रोहित-रोहितास्या और स्वर्णकूला-रूप्यकूला की २८-२८ हजार सहायक नदियाँ हैं, हरित-हरिकान्ता और नारी-नरकान्ता की ५६-५६ हजार सहायक नदियाँ हैं एवं सीता-सीतोदा की १ लाख १२ हजार सहायक नदियाँ हैं।।२०-२३।। **(क्रमश:)**

छहढाला प्रवचन

सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान में अन्तर

सम्यक् साथै ज्ञान होय, पै भिन्न आराधौ।
लक्षण श्रद्धा जानि, दूहू में भेद अबाधौ।।
सम्यक् कारण जान, ज्ञान कारज है सोई।
युगपत् होते हू, प्रकाश दीपक तैं होई।।२।।

(सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक विद्वान पण्डित दौलतरामजीकृत छहढाला की चौथी ढाल पर गुरुदेवश्री के प्रवचन पाठकों के लाभार्थ यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।)

(गतांक से आगे....)

सम्यग्दर्शन के साथ ही सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति होती है, दोनों एक साथ ही प्रकट होते हैं। उनमें समय भेद नहीं है, तथापि उन दोनों की भिन्न-भिन्न आराधना कही गई है; क्योंकि लक्षणभेद से दोनों में भेद है – इसमें कोई बाधा नहीं है। सम्यग्दर्शन का लक्षण तो शुद्धात्मा की श्रद्धा है और सम्यग्ज्ञान का लक्षण स्व-पर को प्रकाशित करनेवाला ज्ञान है। वहाँ सम्यक् श्रद्धा तो कारण है और सम्यग्ज्ञान कार्य है। दोनों साथ होने पर भी दीपक और प्रकाश की भाँति उनमें कारण-कार्यपना कहा गया है। सम्यक् श्रद्धा और सम्यग्ज्ञान की आराधना एकसाथ ही प्रारम्भ होती है; किन्तु पूर्णता एकसाथ नहीं होती। क्षायिक सम्यक्त्व होने पर श्रद्धा की आराधना तो पूर्ण हो गई; किन्तु ज्ञान की आराधना तो केवलज्ञान होने पर पूर्ण होती है। अत: ज्ञान की आराधना भिन्न बतलाई है। सम्यग्दर्शन की भाँति सम्यग्ज्ञान की भी बहुत महिमा है, वह यहाँ बतायेंगे।

सम्यग्दर्शनपूर्वक सम्यग्ज्ञान को दृढ करना चाहिए। सम्यग्दर्शन के साथ ही सम्यग्ज्ञान तो हो गया, फिर भी पर से भिन्न आत्मा की भावना से उस ज्ञान की वृद्धि करना चाहिए। जैसे सूर्य स्वयं को तथा पर को प्रकाशित करता है, वैसे ही सम्यग्ज्ञानरूपी चैतन्य सूर्य अपने आत्मरूप को तथा पर को प्रकाशित करता है – ऐसा उसका स्वभाव है। राग में स्व को और पर को जानने की शक्ति नहीं है। 'मैं राग

हूँ' इसप्रकार राग स्वयं को जानता नहीं है। ज्ञान ही ऐसा जानता है कि 'यह राग है और मैं ज्ञान हूँ' इसप्रकार राग और ज्ञान का स्वभाव भिन्न है। वास्तव में तो राग में चेतनपना ही नहीं है, ज्ञान की अचिन्त्य सामर्थ्य के समक्ष राग तो कुछ है ही नहीं। निज भाव में अभेद होकर और परभाव से भिन्न रहकर ज्ञान स्व-पर को, स्वभाव-विभाव को जैसा है, वैसा जानता है। राग भी ज्ञान से पर तत्त्व है, राग स्व तत्त्व नहीं है – ऐसे भेदज्ञान करने की शक्ति ज्ञान में ही है। ज्ञान ही वीतराग-विज्ञान है, वही जगत में साररूप, मंगलरूप और मोक्ष का कारण है।

मुमुक्षु जीव को प्रथम तो सच्चे तत्त्वज्ञान से सम्यग्दर्शन प्रकट करना चाहिए। ज्ञान या चारित्र सम्यग्दर्शन बिना सच्चा नहीं होता। मिथ्यात्व सहित जो कुछ जाननपना होता है अथवा शुभाचरण होता है, वह सब मिथ्या ही है, उससे जीव को अंश मात्र भी सुख नहीं मिलता। हे भव्य जीव! मोक्ष की प्रथम सीढी सम्यग्दर्शन है, तुम उसे शीघ्र धारण करो – यह बात तीसरी ढाल में की गई है। अब यहाँ सम्यग्दर्शन के साथ सम्यग्ज्ञान की आराधना का उपदेश देते हैं।

भाई ! इस संसार में दु:खों से छूटकर मोक्ष चाहने वालों के लिए यह बात है। जीव संसार के दु:ख तो अनादि से भोग ही रहा है। पुण्य और पाप, स्वर्ग और नरक यह तो अनादि से हो ही रहा है, यह कोई नई बात नहीं है। उससे पार आत्मा का अनुभव कैसे हो, सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कैसे हो ? संसार की चारगति के भटकाव से तुझे थकान लगी हो और उससे छूटकर मोक्ष सुख चाहता हो तो यह उपाय कर।

अहो ! सम्यग्दर्शन अपूर्व चीज है, वही सर्वकल्याण का मूल है, उसके बिना किंचित् भी कल्याण नहीं हो सकता। एक क्षण भी निर्विकल्प चिदानन्द आत्मा का अनुभव करे तो अपूर्व कल्याण हो। उसकी प्राप्ति अपने से होती है, दूसरे से नहीं। देव-शास्त्र-गुरु ऐसा कहते हैं कि जीव ! तेरे लिए हम परद्रव्य हैं, हमारी सन्मुखता से तुझे सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं होगी, वह तो तुझे स्वरूप के लक्ष्य से ही होगी, अत: राग और पराश्रय की बुद्धि छोड़ ! परलक्ष्य छोड़ ! पुण्य-पाप से भी पार अपने शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा की रुचि कर। बाह्य पदार्थ तो दूर हैं ही, अपने में रहनेवाले गुणों के भेद का विकल्प भी जिसमें नहीं – ऐसा सम्यग्दर्शन है, वह अपूर्व वस्तु है। उसके बिना जीव ने पहले बहुत प्रयास किये; परन्तु अपने स्वरूप का सच्चा श्रवण,

रुचि, आदर और अनुभव कभी नहीं किया, इसलिए अब भलीप्रकार जागृत होकर तू आत्मा की पहिचान कर – ऐसा सन्तों का उपदेश है।

अपना परमात्मस्वरूप अनन्त शान्तरस से परिपूर्ण है, उसमें गुण-गुणी के भेद को भी छोडकर अन्तर्मुख सम्यग्दर्शन का आराधन करना – यह बात तीसरी ढाल में कही, अब उस सम्यग्दर्शनपूर्वक ज्ञान की आराधना की बात चलती है। सम्यग्दर्शन या सम्यग्ज्ञान में गुणभेद का विकल्प काम नहीं करता, ये दोनों ही विकल्पों से भिन्न है। अन्तर में राग से भिन्न होने पर चैतन्यस्वभाव की अनुभूतिपूर्वक सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान होता है और अनन्तानुबंधी के अभाव से प्रकट हुआ सम्यक्चारित्र का अंश भी होता है, जिसे स्वरूपाचरण चारित्र कहते हैं। चौथे गुणस्थान से जीव को ऐसे धर्म का प्रारंभ हो जाता है और वह मोक्ष के मार्ग में चलने लगता है।

प्रथम सम्यग्दर्शन और बाद में सम्यग्ज्ञान – ऐसा समय भेद नहीं है, दोनों साथ ही हैं। जहाँ आत्मा की सम्यक् श्रद्धारूप दीपक जला, वहाँ साथ ही सम्यग्ज्ञान का प्रकाश भी प्रकट होता है। सम्यग्दर्शन के साथ मुनिदशा होवे ही – ऐसा नियम नहीं है। मुनिदशा तो हो अथवा न भी हो; परन्तु सम्यग्ज्ञान तो साथ में ही होगा। सम्यग्दृष्टि को ज्ञान भले कम हो; परन्तु होता वह सम्यक् ही है। इसप्रकार दर्शन और ज्ञान दोनों साथ होने पर भी दोनों में लक्षणभेद होने से अन्तर भी है – ऐसा जानकर ज्ञान की पृथक् आराधना की गई है। सम्यग्ज्ञान का प्रारंभ तो सम्यग्दर्शन के साथ ही होता है, फिर भी वह सम्यग्दर्शन के साथ ही पूर्ण नहीं हो जाता, अत: उसकी आराधना अलग से करना चाहिए।

दोनों साथ होने पर भी उनमें सम्यग्दर्शन कारण है और सम्यग्ज्ञान कार्य है। इसप्रकार उनमें कारण-कार्य का व्यवहार करने में आया है। निजानन्द स्वरूप का अनुभव और प्रतीति होने पर ज्ञान भी सम्यक् हो गया। देखो, सम्यग्दर्शन का कार्य सम्यग्ज्ञान कहा, वैसे तो सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान दोनों आत्मा के कार्य हैं; परन्तु उनमें सम्यग्दर्शन की प्रधानता बताने के लिए उसको कारण कहा। अत: पहले कारण और पीछे कार्य – ऐसा नहीं है, दोनों साथ ही हैं।

आत्मा स्वयं क्या चीज है, उसको तो जाने नहीं और उसके बिना भक्ति, व्रत, दान, पूजा आदि करे तो पुण्य बांधकर स्वर्ग में जायेगा और बाद में चतुर्गति में भटकेगा। सम्यग्दर्शन के बिना आत्मा का लाभ नहीं हुआ और भव का अन्त नहीं आया। यह

तो जिससे भव का अन्त आवे और मोक्ष का सुख मिले – ऐसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान की बात है। आत्मदर्शन और आत्मज्ञान बिना तीनकाल, तीनलोक में कहीं सुख नहीं है। भले ही पुण्य करके स्वर्ग जाय; परन्तु वहाँ भी लेशमात्र सुख नहीं है। जीव ने पुण्य-पाप किया वह तो अनादि की चाल है, वह नया कार्य नहीं है। आत्मा के ज्ञान से मिथ्यात्व का अभाव होना ही अपूर्व मोक्षमार्ग की चाल है। देखो, सम्यग्ज्ञान को सम्यग्दर्शन का कार्य कहा; किन्तु उसे शुभ राग का कार्य नहीं कहा। राग करते-करते सम्यग्ज्ञान हो जायेगा ऐसा नहीं कहा; क्योंकि सम्यग्ज्ञान राग का कार्य नहीं है।

सम्यग्दर्शन का लक्षण 'श्रद्धा' और सम्यग्ज्ञान का लक्षण 'जानना' है। सम्यग्दर्शन कारण और सम्यग्ज्ञान कार्य है।

इस भाँति दो प्रकार से लक्षण के द्वारा भिन्नता बताई, इसमें कहीं बाधा नहीं है। जैसे दीपक और प्रकाश दोनों एकसाथ होते हैं, तथापि दीपक के कारण उजाला हुआ – ऐसा कहा जाता है, वैसे ही सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान एकसाथ होने पर भी उनमें कारण-कार्यपना कहा। श्रद्धा को मुख्य बताने के लिए उसे कारण कहा और ज्ञान को कार्य कहा। यह कारण-कार्य दोनों शुद्ध हैं, उन दोनों के बीच में कहीं राग नहीं आया। राग या देहादि की क्रिया में तो सम्यग्ज्ञान के कारण का उपचार भी नहीं आता।

पूर्वपर्याय कारण और उत्तरपर्याय कार्य – ऐसा भी कहा जाता है, जैसे मोक्षमार्ग कारण और मोक्ष कार्य है।

अनेक वर्तमान पर्यायों में एक कारण और दूसरी कार्य – ऐसा भी कहा जाता है, जैसे सम्यग्ज्ञान कारण और सुख कार्य।

द्रव्य कारण और पर्याय कार्य – ऐसा भी कहा जाता है, जैसे सम्यग्दर्शन का कारण शुद्ध भूतार्थ आत्मा।

इस तरह अनेक प्रकार की विवक्षा से कारण-कार्य के भेद पड़ते हैं, उन्हें जैसे हैं, वैसे जानना चाहिए। कारर्ण-कार्य को एकान्त अभेद मानना या एकान्त भिन्न आगे-पीछे मानना सच्चा नहीं है। अज्ञानी जीव सच्चे कारण-कार्य को जानता नहीं है और अन्य विपरीत कारणों को मानता है अथवा एक के कारण-कार्य को दूसरे में मिलाकर मानता है, अत: उसके ज्ञान में कारण-कार्य का विपर्यास है अर्थात् मिथ्याज्ञान में कारण विपरीतता, स्वरूप विपरीतता, भेदाभेद विपरीतता कही है। **(क्रमश:)**

नियमसार प्रवचन –

अचौर्यव्रत का स्वरूप

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम नियमसार के शुद्धभावाधिकार की 58वीं गाथा पर हुये आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरस गर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है।

गाथा मूलत: इसप्रकार है –

गामे वा णयरे वाऽरण्णे वा पेच्छिऊण परमत्थं।
जो मुयदि गहणभावं तिदियवदं होदि तस्सेव।।५८।।

(हरिगीत)

ग्राम में वन में नगर में देखकर परवस्तु जो।
उसके ग्रहण का भाव त्यागे तीसरा व्रत उसे हो।।५८।।

ग्राम में नगर में या वन में परायी वस्तु को देखकर जो (साधु) उसे ग्रहण करने के भाव को छोड़ता है, उसी को तीसरा व्रत है।

(गतांक से आगे....)

ग्राम में, नगर में या वन में परायी वस्तु को देखकर जो (साधु) उसे ग्रहण करने के भाव को छोड़ता है, उसी को तीसरा व्रत कहते हैं।

अब तीसरे अचौर्यव्रत का स्वरूप कहते हैं।

यहाँ बाहरी पदार्थ की क्रिया की बात नहीं है; किन्तु परिणाम की बात है। मुनि को परायी वस्तु को देखकर उसके ग्रहण करने के परिणाम ही नहीं होते। स्वभाव के आश्रय से शुद्धपरिणति प्रकटी है और कुछ राग भी होता है, वहाँ भी परवस्तु को ग्रहण करने के परिणाम नहीं होते – ऐसी मुनि की दशा होती है।

जिसके चौतरफ बाड़ हो वह ग्राम है; जो चार द्वारों से सुशोभित हो वह नगर है; जो मनुष्य के संचार रहित वनस्पतिसमूह, बेलों और वृक्षों के झुण्ड आदि से खचाखच भरा हो वह अरण्य है। ऐसे ग्राम, नगर या अरण्य में अन्य से छोड़ी हुई, गिरी हुई अथवा भूली हुई परवस्तु को देखकर उसके स्वीकार परिणाम का अर्थात् उसे अपनी बनाने-ग्रहण करने के परिणाम का, जो परित्याग करता है, उसे वास्तव में तीसरा व्रत होता है।

वस्तु देखकर उसको लेने के परिणाम हुए और बाद में छोड़े – ऐसी बात नहीं है। यदि लेने के परिणाम हो गए तब तो वह अचौर्यव्रत नहीं रहा। मुनि के तो ऐसे परिणाम होते ही नहीं, अतः उसका नाम अचौर्यव्रत है।

(आर्या)

आकर्षति रत्नानां संचयमुच्चैरचौर्य्यमेतदिह।
स्वर्गस्त्रीसुखमूलं क्रमेण मुक्त्यंगनायाश्च।।७८।।

(हरिगीत)

अचौर्यव्रत इस लोक में धन सम्पदा का हेतु है।
परलोक में देवांगनाओं के सुखों का हेतु है।।
शुद्ध एवं सहज निर्मल परिणति के संग से।
परम्परा से मुक्तिवधु का हेतु भी कहते इसे॥७८॥

यद्यपि यह उग्र अचौर्यव्रत इस लोक में रत्नों के संचय को आकर्षित करता है और परलोक में देवांगनाओं के सुख का कारण है; तथापि क्रमानुसार मुक्तिरूपी अंगना (स्त्री) के सुख का कारण भी है।

स्वभाव का अवलम्बन है और अशुभ परिणाम आने नहीं दिए तब शुभ भाव से पुण्य बंधकर बाहर के रत्नों का खजाना मिलता है; परन्तु उस शुभ से अन्तर के चैतन्यरत्न की प्राप्ति नहीं होती। चैतन्यरत्न की प्राप्ति तो स्वभाव के ही अवलम्बन से होती है। व्यवहारव्रत तो शुभ राग है, संयोगी भाव है, उसके फल में बाह्य संयोग मिलता है। व्यवहारव्रत को परम्परा से क्रम से मुक्ति का कारण कहा, वहाँ व्यवहारव्रत में जो शुभ राग है उसका फल तो स्वर्ग ही है; परन्तु उसी समय साथ में स्वभाव के अवलम्बन से जो वीतरागी भाव प्रकट हुआ है; वह क्रम से मुक्ति का कारण होता है, इसलिए उसके साथ होने वाले शुभ राग को भी उपचार से मुक्ति का परम्परा कारण कहा है। निश्चय के अवलम्बन की दृष्टि पड़ी है इसलिए व्यवहार को उपचार से कारण कहा जाता है। निश्चयस्वभाव का आश्रय लेना तो मुक्ति का कारण है और शुभ राग व्यवहार है और बन्धन का कारण है। स्वभाव के अवलम्बन से राग को तोड़ देने पर ही मुक्ति प्राप्ति होगी।

दट्ठूण इत्थिरूवं वांछाभावं णियत्तदे तासु।
मेहुणसण्णविवज्जियपरिणामो अहव तुरीयवदं।।५९।।

(हरिगीत)

देख रमणी रूप वांछा भाव से निर्वृत्त हो।
या रहित मैथुनभाव से है वही चौथा व्रत अहो।।५९।।

महिलाओं का रूप देखकर उनके लक्ष्य से होने वाले वांछारूप भावों से निवृत्ति अथवा मैथुनसंज्ञा से रहित परिणामों को ब्रह्मचर्य नामक चौथाव्रत कहते हैं।

अब चौथे ब्रह्मचर्य महाव्रत का स्वरूप कहते हैं।

मुनि तो अन्तर में चैतन्य का रूप देखने वाले हैं। सम्यग्दृष्टि भी अन्तर में चैतन्य का रूप देखता ही है। मुनि के विशेषतया स्वभाव का अवलम्बन है अर्थात् उनके स्त्री आदि के देखने में आसक्ति के परिणाम भी नहीं होते। चैतन्य के अवलम्बन से वीतरागी अकषायदशा अवस्थित है अर्थात् स्त्री आदि के रूप को देखकर उनके वांछा अथवा कौतूहल के परिणाम नहीं होते – इसका नाम ब्रह्मचर्यव्रत है।

एक समय भी अन्तरस्वभाव का अवलम्बन टूटता नहीं, वहाँ छठे गुणस्थान में शुभराग होने पर व्यवहारब्रह्मचर्य की वृत्ति उठती है। निश्चय से तो स्वभाव के आश्रय से रागरहित वीतरागभाव प्रकट हुआ है वही ब्रह्मचर्यधर्म है। शुभरागरूप ब्रह्मचर्य वह व्यवहारव्रत है।

(मालिनी)

भवति तनुविभूतिः कामिनीनां विभूतिं
स्मरसि मनसि कामिंस्त्वं तदा मद्वचः किम्।
सहजपरमतत्त्वं स्वस्वरूपं विहाय
व्रजसि विपुलमोहं हेतुना केन चित्रम् ।।७९।।

(हरिगीत)

कामी पुरुष यदि तू सदा ही कामनी ही देह के।
सौन्दर्य के संबंध में ही सोचता है निरन्तर।।
तेरे लिये मेरे वचन किस काम के किस हेतु से।
निज रूप को तज मोह में तू फंस रहा है निरन्तर।।७९।।

हे कामी पुरुष ! यदि तू सुन्दर महिलाओं के शरीर के सौन्दर्य को देख-देखकर मन में उसका ही स्मरण करता रहता है, विचार करता रहता है तो फिर मेरे वचनों से तुझे क्या लाभ होगा ?

अहो आश्चर्य तो यह है कि सहजपरमतत्त्वरूप निजस्वरूप को छोड़कर तू अत्यधिक मोह को किसलिए प्राप्त हो रहा है ?

अहो! वीतरागी चैतन्यमूर्ति आत्मा को छोड़कर तुझे यह बाहर में स्त्री के रूप का मोह क्यों होता है? अन्तर में निजकारणभगवान ज्ञायकपरमात्मा विराजता है, उसे छोड़कर तू बाहर के रूप में क्यों विपुल मोह को प्राप्त होता है? अन्तर की चैतन्यविभूति के आनन्द को छोड़कर तुझे बाहर की स्त्री की शारीरिक विभूति देखकर मोह क्यों होता है? – यह आश्चर्य है।

मुनि के तो ऐसी वृत्ति नहीं होती, तथापि जगत के लिए उपदेश है। ●

ज्ञान गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा
पूज्य स्वामीजी से पूछे गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर

प्रश्न : द्रव्य में से पर्याय उत्पन्न होती है, पर्याय व्यय होकर द्रव्य में मिलती है; तब द्रव्य ध्रुव टंकोत्कीर्ण तो नहीं रहा?

उत्तर : पर्याय द्रव्य में से उत्पन्न होती है और पर्याय व्यय होकर द्रव्य में मिलती है, यह पर्यायार्थिक नय से कहा है। द्रव्यार्थिक नय से द्रव्य तो ध्रुव टंकोत्कीर्ण कूटस्थ है।

प्रश्न : द्रव्य से पर्याय भिन्न है तो पर्याय कहाँ से आती है ?

उत्तर : पर्याय आती तो द्रव्य में से ही है, कहीं बाहर से नहीं आती; लेकिन जब पर्याय को सत् रूप से स्वतंत्र सिद्ध करना हो तब पर्याय, पर्याय से ही है। द्रव्य से पर्याय हो तो द्रव्य एकरूप रहता है और पर्याय अनेकरूप होती है। उसे द्रव्य जैसी एकरूप ही होना चाहिए, लेकिन वैसी होती नहीं। द्रव्य सत् है; वैसे पर्याय भी सत् है, स्वतंत्र है – इस अपेक्षा से द्रव्य से पर्याय को भिन्न कहा जाता है।

प्रश्न : द्रव्य और पर्याय दो धर्मों को पृथक् बताने का क्या प्रयोजन है ?

उत्तर : दो धर्म भिन्न हैं; उनकी प्रसिद्धि करने का प्रयोजन है। पर्याय एक समय की है और उसके पीछे ध्रुव द्रव्यत्व त्रिकाल ज्यों का त्यों रहता है, इसका ज्ञेय बनाना चाहिए।

प्रश्न : आत्मा के पर्याय धर्म को स्वीकार न किया जाये तो क्या हानि है ?

उत्तर : आत्मा के पर्यायधर्म को माने जाने तो 'पर के आश्रय से अपनी पर्याय होती है' – ऐसी मिथ्या मान्यता छूट जाये और 'अपने द्रव्य के आश्रय से ही अपनी पर्याय होती है' – ऐसी सच्ची मान्यता हो जाये – ऐसा हो जाने पर 'परद्रव्य से मुझे लाभ-हानि होती है' – ऐसी मिथ्याबुद्धि नहीं रहे। जिसने पर से अपनी पर्याय में लाभ-हानि होना माना, उसने आत्मा के पर्याय धर्म को वास्तव में जाना ही नहीं। पर्याय धर्म अपना है, किसी अन्य वस्तु के कारण अपना पर्याय धर्म नहीं होता।

यदि दूसरा पदार्थ आत्मा की पर्याय को करे तो आत्मा के पर्याय धर्म ने क्या किया? यदि निमित्त से पर्याय का होना माना जाये तो आत्मा का पर्याय धर्म ही नहीं रहता। अपनी अनादि अनन्त पर्याय अपने से ही होती है - इसप्रकार यदि अपने पर्याय धर्म को न जाने तो ज्ञान प्रमाण नहीं होता।

प्रश्न : द्रव्य और पर्याय को भिन्न-भिन्न सिद्ध करने का प्रयोजन क्या है ?

उत्तर : त्रिकाली द्रव्य और प्रकट पर्याय दोनों भिन्न-भिन्न धर्म अस्तिरूप हैं। उन दोनों धर्मों का परस्पर भिन्न अस्तित्त्व सिद्ध करना ही प्रयोजन है।

प्रश्न : ज्ञान गुण में जितने अविभागी प्रतिच्छेद है, उतने अविभागी प्रतिच्छेद सभी गुणों में है क्या ?

उत्तर : हाँ; जितने अविभागी प्रतिच्छेद एक ज्ञान गुण में है, उतने ही श्रद्धा-चारित्र-वीर्यादि सभी गुणों में है। जिसका भाग करने पर दूसरा भाग न हो सके - ऐसे अविभागप्रतिच्छेद एक गुण में अनन्त हैं; ये अनंत अविभागप्रतिच्छेद केवलज्ञान होने पर पूर्ण प्रकट होने पर भी ज्ञान गुण में से घटते नहीं है - ऐसा ही स्वभाव है। यह बहुत सूक्ष्म बात है। ज्ञान के अतिरिक्त अन्य गुण कुछ जानते नहीं है; इसलिये उन गुणों के अविभागप्रतिच्छेद कुछ कम होते होंगे - ऐसा नहीं है।

प्रश्न : परिणामी निश्चय से अपने परिणाम का कर्त्ता है; तथापि पूर्व पर्याय का व्यय कर्त्ता है - यह कथन किसप्रकार है ?

उत्तर : वास्तव में तो उत्पाद की पर्याय का कर्त्ता उत्पाद ही है, किन्तु अभेद करके उपचार से परिणामी को कर्त्ता कहा गया है; परन्तु द्रव्य तो परिणमता ही नहीं, वह तो निष्क्रिय है; पलटनेवाली तो पर्याय है। व्यय को उत्पाद का कर्त्ता कहना भी व्यवहार ही है। षट्कारक का परिणाम ध्रुव और व्यय की अपेक्षा रहित स्वयं सिद्ध उत्पाद होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के समस्त ऑडियो - वीडियो प्रवचन साहित्य एवं अन्य अनेक जानकारियों के लिये अवश्य देखें -
वेबसाईट - www.vitragvani.com
संपर्क सूत्र-श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई
Ph.: 022-26130820, 26104912, E-Mail- info@vitragvani.com

समाचार दर्शन -

सिद्धचक्र महामंडल विधान संपन्न

जयपुर (राज.) : यहाँ श्री टोडरमल स्मारक भवन में अष्टाह्निका महापर्व के अवसर पर दिनांक 30 अक्टूबर से 6 नवम्बर 2014 तक **श्री सुरेशचन्द अजीतकुमार वैभवकुमार तोतूका परिवार जयपुर एवं श्रीमती ललितादेवी धर्मपत्नी स्व. गोपीचन्दजी लुहाड़िया व निर्मल-रमेश-अरुण-प्रतीक-लव लुहाड़िया परिवार जयपुर** की ओर से आयोजित श्री सिद्धचक्र महामंडल विधान बहुत हर्षोल्लासपूर्वक संपन्न हुआ।

इस अवसर पर प्रात: सिद्धचक्र महामण्डल विधान के मध्य तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल द्वारा **'भगवान महावीर का जीवन और सिद्धान्त'** विषय पर मार्मिक प्रवचनों का लाभ मिला। विधानोपरान्त डॉ. संजीवकुमारजी गोधा द्वारा प्रतिदिन क्रमबद्धपर्याय पर कक्षा का लाभ मिला।

रात्रि में जिनेन्द्र भक्ति एवं छात्र प्रवचन के उपरान्त पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल जयपुर, ब्र. अभिनन्दनजी शास्त्री खनियांधाना, डॉ. संजीवकुमारजी गोधा जयपुर, पण्डित परमात्मप्रकाशजी भारिल्ल मुम्बई, पण्डित नन्दकिशोरजी मांगुलकर काटोल, पण्डित पीयूषजी शास्त्री जयपुर, पण्डित अनेकान्तजी भारिल्ल मुम्बई आदि अनेक विद्वानों के प्रवचनों का लाभ मिला। तदुपरान्त डॉ. दीपकजी जैन 'वैद्यरत्न' जयपुर द्वारा प्रतिदिन गोम्मटसार पर कक्षा का लाभ मिला।

विधान के अवसर पर बीच-बीच में अनेक छंदों का अर्थ ब्र. अभिनन्दनजी शास्त्री, पण्डित शान्तिकुमारजी पाटील जयपुर व डॉ. संजीवकुमारजी गोधा द्वारा समझाया गया। कार्यक्रम में टोडरमल महाविद्यालय के विद्यार्थियों सहित लगभग 500-600 साधर्मियों ने लाभ लिया।

विधान के अंतिम दिन मंगल कलश भव्य शोभायात्रापूर्वक विधानकर्त्ता परिवार के घर पर ले जाया गया। अन्तिम दिन पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट द्वारा दोनों विधानकर्त्ता परिवारों का सम्मान हुआ। एक दिन दोपहर में वीतराग-विज्ञान महिला मंडल बापूनगर द्वारा भजनों का कार्यक्रम आयोजित किया, जिसमें दोनों विधानकर्त्ता परिवारों का सम्मान भी किया।

विधि-विधान के समस्त कार्य ब्र. अभिनन्दनकुमारजी शास्त्री खनियांधाना ने पण्डित सोनूजी शास्त्री जयपुर व पण्डित विवेकजी शास्त्री दलपतपुर के सहयोग से संपन्न कराये। कार्यक्रम का निर्देशन श्री परमात्मप्रकाशजी भारिल्ल एवं श्री शुद्धात्मप्रकाशजी भारिल्ल ने किया।

इस विधान के सुन्दर आयोजन को देखकर वर्ष 2015 की कार्तिक माह की अष्टाह्निका पर्व के अवसर पर सिद्धचक्र विधान के लिए भी 2 मुख्य विधान आमंत्रणकर्त्ता एवं 5 सहयोगी विधानकर्त्ताओं की स्वीकृति प्राप्त हुई है।

आध्यात्मिक शिक्षण शिविर सानंद संपन्न

मंगलायतन-अलीगढ (उ.प्र.) : यहाँ भगवान महावीर निर्वाणोत्सव के अवसर पर दिनांक 22 से 28 अक्टूबर तक आध्यात्मिक शिक्षण शिविर एवं पंचमेरु नंदीश्वर मण्डल विधान का आयोजन किया गया।

इस अवसर पर आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी के छहढाला पर सी.डी. प्रवचनों के अतिरिक्त पण्डित ज्ञानचंदजी सोनागिर द्वारा छहढाला व मोक्षमार्गप्रकाशक, पण्डित वीरेन्द्रकुमारजी आगरा द्वारा समयसार, पण्डित देवेन्द्रकुमारजी मंगलायतन द्वारा समयसार एवं डॉ. संजीवजी गोधा जयपुर द्वारा शंका-समाधान, परमभाव प्रकाशक नयचक्र तथा रात्रि में पंचमेरु-नंदीश्वर का स्वरूप, पण्डित संजयजी शास्त्री मंगलायतन द्वारा समाधिमरण का स्वरूप एवं पण्डित सचिनजी जैन द्वारा मोक्षमार्गप्रकाशक विषय पर प्रवचनों एवं कक्षाओं का लाभ मिला।

सायंकाल जिनेन्द्र भक्ति के अतिरिक्त रात्रि में प्रवचनोपरान्त सांस्कृतिक कार्यक्रमों का भी आयोजन हुआ। इस अवसर पर गुरुदेवश्री के वीडियो प्रवचनों की प्रस्तुति **मंगल वाणी** एवं गुरुदेवश्री के जीवन परिचय पर आधारित **कहान क्रमबद्धकथा** नामक डी.वी.डी. सेट का विमोचन किया गया।

शिविर में उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, बिहार, गोहाटी-असम आदि अनेक स्थानों से सैंकड़ों साधर्मियों ने पधाकर धर्मलाभ लिया। कार्यक्रम में दिनांक 1 से 6 अप्रैल 2015 को विदिशा में पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट जयपुर एवं तीर्थधाम मंगलायतन के संयुक्त तत्त्वावधान में होने वाले पंचकल्याणक का आमंत्रण पण्डित ज्ञानचंदजी विदिशा एवं श्री प्रमोदजी जैन द्वारा दिया गया। विधान के आयोजनकर्त्ता श्री धर्मचन्द लक्ष्मीचंद एवं महेन्द्रकुमारजी छाबड़ा परिवार सीकर थे।

विधि-विधान के समस्त कार्य पण्डित संजयजी शास्त्री मंगलायतन, श्री सुबोधजी जैन ग्वालियर एवं मंगलार्थी छात्रों द्वारा भक्तिभावपूर्वक संपन्न हुये।

'मोना' द्वारा विशेष शिविर संपन्न

देवलाली-नासिक (महा.) : यहाँ भगवान महावीर निर्वाणोत्सव के उपरान्त दिनांक 25 से 29 अक्टूबर तक मुमुक्षु ऑफ नॉर्थ अमेरिका (मोना) द्वारा विशेष शिविर का आयोजन किया गया। इस शिविर में 'भेदविज्ञानत: सिद्धा:' विषय पर अनेक वक्ताओं द्वारा अपना चिन्तन प्रस्तुत किया गया।

इस अवसर पर तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल द्वारा मार्गदर्शन स्वरूप उद्बोधन हुआ। इसके अतिरिक्त डॉ. उत्तमचंदजी सिवनी, ब्र. हेमचंदजी 'हेम' देवलाली, पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री देवलाली, डॉ. राकेशजी शास्त्री नागपुर, श्री भरतभाई सेठ राजकोट, श्री चेतनभाई राजकोट आदि के वक्तव्य का लाभ मिला।

अष्टाह्निका पर्व सानन्द संपन्न

(1) अजमेर (राज) : यहाँ पुरानी मण्डी स्थित सीमन्धर जिनालय में अष्टाह्निका पर्व पर दिनांक 30 अक्टूबर से 6 नवम्बर तक श्री सैंतालीस शक्ति विधान का आयोजन हुआ।

इस अवसर पर पण्डित मनीषजी शास्त्री इन्दौर द्वारा तीनों समय 47 शक्तियों, प्रथमानुयोग व करणानुयोग पर कक्षाओं का लाभ मिला। आपकी कक्षाओं से युवा वर्ग अत्यधिक प्रभावित हुआ। कार्यक्रम में लगभग 100 साधर्मियों ने पधारकर धर्म लाभ लिया।

विधि-विधान के समस्त कार्य पण्डित दिनेशजी कासलीवाल उज्जैन के निर्देशन में स्थानीय श्री वीतराग महिला मण्डल द्वारा संपन्न हुआ।

(2) टीकमगढ (म.प्र.) : यहाँ अष्टाह्निका पर्व के अवसर पर दिनांक 30 अक्टूबर से 6 नवम्बर तक ज्ञानमंदिर में श्री गुलाबचंदजी परिवार मुम्बई द्वारा श्री सिद्धचक्र मण्डल विधान का आयोजन हुआ। इस अवसर पर प्रतिदिन 1 घंटा गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के सी.डी. प्रवचनों के अतिरिक्त पण्डित सुबोधजी सिंघई सिवनी के प्रवचनों का लाभ मिला। विधि-विधान के समस्त कार्य पण्डित विरागजी शास्त्री जबलपुर द्वारा संपन्न हुये। **- संजय जैन हल्ले**

युवा संस्कार शिविर संपन्न

सिद्धायतन-द्रोणगिरि (म.प्र.) : यहाँ श्री गुरुदत्त कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के तत्त्वावधान में भगवान महावीर निर्वाणोत्सव के पश्चात् दिनांक 26 से 28 अक्टूबर तक युवा संस्कार शिविर का आयोजन किया गया।

इस अवसर पर ब्र. रवीन्द्रजी 'आत्मन्' अमायन द्वारा प्रात: समयसार व दोपहर में रत्नकरण्ड श्रावकाचार पर आध्यात्मिक प्रवचनों का लाभ मिला। इसके अतिरिक्त अन्य अनेक विद्वानों के प्रवचन एवं गोष्ठी के माध्यम से लाभ मिला। रात्रि में प्रवचनोपरान्त सांस्कृतिक कार्यक्रमों का भी आयोजन हुआ।

शिविर में प्रात:काल नित्यनियम पूजन एवं सायंकाल जिनेन्द्र-भक्ति का भी आयोजन किया गया। उद्घाटन सभा में ध्वजारोहण श्री धनपालजी ज्ञायक बांसवाड़ा द्वारा हुआ।

कार्यक्रम में बुन्देलखण्ड में हुए ग्रुप शिविर का समापन समारोह भी रखा गया। संपूर्ण कार्यक्रम में देशभर से लगभग 250 साधर्मियों ने उपस्थित होकर धर्मलाभ लिया।

ब्र. यशपालजी द्वारा तत्त्वप्रचार

भोपाल (म.प्र.) : यहाँ चौक मंदिर के सभागृह में दिनांक 24 अक्टूबर से 2 नवम्बर तक प्रात:काल पहले से तीसरे गुणस्थान विषय पर कक्षाओं का लाभ मिला। सायंकाल चौक मंदिर के सामने नूतन समवशरण मंदिर में भी कक्षओं का लाभ मिला।

दिनांक 12 व 13 नवम्बर को कर्म की बंध सत्ता अवस्था विषय पर कक्षाओं का लाभ मिला। सभी साधर्मियों ने रुचिपूर्वक कक्षाओं का लाभ लिया एवं पुन: आने की भावना व्यक्त की।

कारंजा (महा.) : यहाँ महावीर ब्रह्मचर्याश्रम के विद्यार्थियों एवं कार्यकर्ताओं में धर्मरुचि जागृत करने हेतु दिनांक 4 से 10 नवम्बर तक प्रवचनों का लाभ मिला।

भ.महावीर निर्वाणोत्सव सानंद संपन्न

देवलाली-नासिक (महा.) : यहाँ भगवान महावीर निर्वाणोत्सव के अवसर पर दिनांक 20 से 24 अक्टूबर तक 170 तीर्थंकर मंडल विधान का आयोजन किया गया।

इस अवसर पर तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल द्वारा समयसार कलश 271-278 पर प्रवचन हुये। इसके साथ ही समयसार पर धारावाही प्रवचनों का यहाँ समापन हुआ। समयसार के बंध अधिकार तक हुये प्रवचनों के 8-8 वीडियो प्रवचन वाली 47 वी.सी.डी. के 100 सेट अर्थात् 37 हजार 600 घंटों के वीडियो प्रवचन कतिपय मुमुक्षु भाईयों की ओर से सभी साधर्मियों को नि:शुल्क प्रदान किये गये। इसके अतिरिक्त ब्र. हेमचंदजी 'हेम' देवलाली एवं पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री देवलाली के प्रवचनों का भी लाभ मिला।

विधि-विधान के समस्त कार्य ब्र. अभिनन्दनजी शास्त्री खनियांधाना, पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री देवलाली, पण्डित दीपकजी जैन भोपाल एवं ब्र. अमृतभाई देवलाली द्वारा संपन्न हुये।

शोक समाचार

(1) चन्देरी (म.प्र.) निवासी स्व. पण्डित चुन्नीलालजी शास्त्री के द्वितीय सुपुत्र श्री जीवन्धरजी बंसल का 82 वर्ष की आयु में दिनांक 29 अक्टूबर को शांतपरिणामोंपूर्वक देहावसान हो गया।

वे अत्यंत धार्मिक व स्वाध्याय की रुचि वाले थे। जयपुर में आयोजित अनेक शिविरों में आकर तत्त्वज्ञान का लाभ भी लेते थे। आप डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल के साले और और पण्डित शान्तिकुमारजी पाटील के श्वसुर थे। आपकी स्मृति में टोडरमल स्मारक ट्रस्ट हेतु 1100/- रुपये प्राप्त हुये।

(2) नागपुर (महा.) निवासी श्री कोमलचंदजी जैन का 85 वर्ष की आयु में दिनांक 26 अक्टूबर को शांतपरिणामोंपूर्वक देहविलय हो गया।

आप अत्यंत स्वाध्यायी थे। छ: दिन पूर्व ही नागपुर महाविद्यालय के समाधि कक्ष में चार दिनों तक ब्र.वासन्ती बेन व ब्र. प्रतीति बेन द्वारा समाधि विषय पर प्रवचनों का लाभ लिया एवं समाधिमरण की भावना भायी।

ज्ञातव्य है कि आप टोडरमल महाविद्यालय के प्रथम बैच के स्नातक डॉ. राकेशजी शास्त्री नागपुर के पिताजी थे।

दिवंगत आत्मायें चतुर्गति के दु:खों से छूटकर शीघ्र ही अनंत अतीन्द्रिय आनंद को प्राप्त हों - यही मंगल भावना है।

श्री टोडरमल जैन मुक्त विद्यापीठ के छात्र ध्यान दें

पत्राचार पाठ्यक्रम की दिसम्बर 2014 के अंतिम सप्ताह में होने वाली द्वितीय सेमेस्टर की परीक्षाओं के पाठ्यक्रम का विवरण निम्नानुसार है; परीक्षार्थी इसी के अनुसार तैयारी करें -

द्विवर्षीय विशारद परीक्षा

प्रथम वर्ष (द्वितीय सेमेस्टर) -
1. वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग-2
2. वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग-3

द्वितीय वर्ष (द्वितीय सेमेस्टर) -
1. तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग-2
2. धर्म के दशलक्षण + भक्तामर स्तोत्र

त्रिवर्षीय सिद्धांत विशारद परीक्षा

प्रथम वर्ष (द्वितीय सेमेस्टर)-
1. रत्नकरण्ड श्रावकाचार
2. रामकहानी + आप कुछ भी कहो

द्वितीय वर्ष (द्वितीय सेमेस्टर)-
1. मोक्षमार्गप्रकाशक पूर्वार्द्ध (1 से 5 अध्याय)
2. नयचक्र-पूर्वार्द्ध (निश्चय व्यवहार)
3. हरिवंशकथा + भ.महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ

तृतीय वर्ष (द्वितीय सेमेस्टर)-
1. मोक्षमार्गप्रकाशक उत्तरार्द्ध (6 से 10 अध्याय)
2. नयचक्र-उत्तरार्द्ध (द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक नय प्रकरण)
3. शलाका पुरुष (सम्पूर्ण)

नोट : सभी परीक्षार्थियों को उनके प्रश्नपत्र केन्द्र/उनके पते पर दिसम्बर के तृतीय सप्ताह तक डाक द्वारा भेज दिये जायेंगे। यदि 25 दिसम्बर तक भी पेपर न मिले तो जयपुर कार्यालय से संपर्क करें।

साप्ताहिक गोष्ठियाँ संपन्न

जयपुर (राज) : यहाँ टोडरमल स्मारक भवन में साप्ताहिक गोष्ठियों की श्रृंखला में दिनांक 2 अक्टूबर को **'क्रमबद्धपर्याय : एक अनुशीलन'** विषय पर एक गोष्ठी का आयोजन किया गया। इस गोष्ठी की अध्यक्षता पण्डित संजयजी सेठी जयपुर ने की। श्रेष्ठ वक्ता के रूप में शुभांशु जैन (उपाध्याय वरिष्ठ) एवं विकास जैन (शास्त्री द्वितीय वर्ष) रहे। मंगलाचरण सौमिल जैन (उपाध्याय कनिष्ठ) ने किया।

गोष्ठी का संचालन अमोल महाजन एवं संदेश जैन (शास्त्री तृतीय वर्ष) ने किया।

दिनांक 4 अक्टूबर को **'चार अनुयोग : एक अनुशीलन'** विषय पर एक गोष्ठी का आयोजन किया गया। इस गोष्ठी की अध्यक्षता डॉ. दीपकजी जैन जयपुर ने की।

श्रेष्ठ वक्ता के रूप में ज्ञायक जैन (उपाध्याय वरिष्ठ) एवं शुभम हातगिणे (शास्त्री तृतीय वर्ष) रहे। मंगलाचरण श्रेंकी जैन (उपाध्याय कनिष्ठ) ने किया।

गोष्ठी का संचालन अक्षय अन्नदाते एवं योगेश जैन (शास्त्री तृतीय वर्ष) ने किया।

श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड

श्री टोडरमल स्मारक भवन

ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015 (राजस्थान)

शीतकालीन परीक्षा - कार्यक्रम -2015

दिन व दिनांक	नाम ग्रन्थ
रविवार 25 जनवरी 2015	1. बालबोध पाठमाला भाग-1 (मौखिक) 2. जैन बालपोथी भाग-1 (मौखिक) 3. वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग-1 4. तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग-1 5. छहढाला (पूर्ण) 6. तत्त्वार्थसूत्र (मोक्षशास्त्र) पूर्वार्द्ध 7. मोक्षमार्गप्रकाशक (पूर्वार्द्ध) 8. जैन सिद्धान्त प्रवेशिका (गोपालदासजी बरैया कृत) 9. विशारद प्रथम खण्ड (प्रथम वर्ष)
सोमवार 26 जनवरी 2015	1. बालबोध पाठमाला भाग-2 (मौखिक) 2. जैन बालपोथी भाग-2 (मौखिक) 3. वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग-2 4. तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग-2 5. द्रव्यसंग्रह (पूर्ण) 6. तत्त्वार्थसूत्र (मोक्षशास्त्र) उत्तरार्द्ध 7. लघु जैनसिद्धान्त प्रवेशिका (सोनगढ़) 8. मोक्षमार्गप्रकाशक (उत्तरार्द्ध) 9. विशारद द्वितीय खण्ड (प्रथम वर्ष) 10. विशारद प्रथम खण्ड (द्वितीय वर्ष)
मंगलवार 27 जनवरी 2015	1. बालबोध पाठमाला भाग-3 (मौखिक) 2. वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग-3 3. रत्नकरण्ड श्रावकाचार (पूर्ण) 4. पुरुषार्थसिद्ध्युपाय (पूर्ण) 5. विशारद द्वितीय खण्ड (द्वितीय वर्ष)

नोट - (1) सुविधानुसार परीक्षा का समय प्रात: 9 से शाम 5 बजे के बीच कभी भी सैट कर सकते हैं।
(2) जहाँ एक से अधिक केन्द्र हों, वे आपस में मिलकर समय निश्चित करें।
(3) किन्हीं विषयों के छात्र आपस में टकराते हों तो परीक्षा सुविधानुसार दिन में दो बार ली जा सकती है।
(4) बालबोध पाठमाला भाग 1, 2, 3 और जैन बालपोथी भाग-1 व 2 की परीक्षायें मौखिक में लेवें। शेष सभी विषयों की परीक्षायें लिखित में लेवें। **- ओमप्रकाश आचार्य, प्रबंधक-परीक्षा बोर्ड**

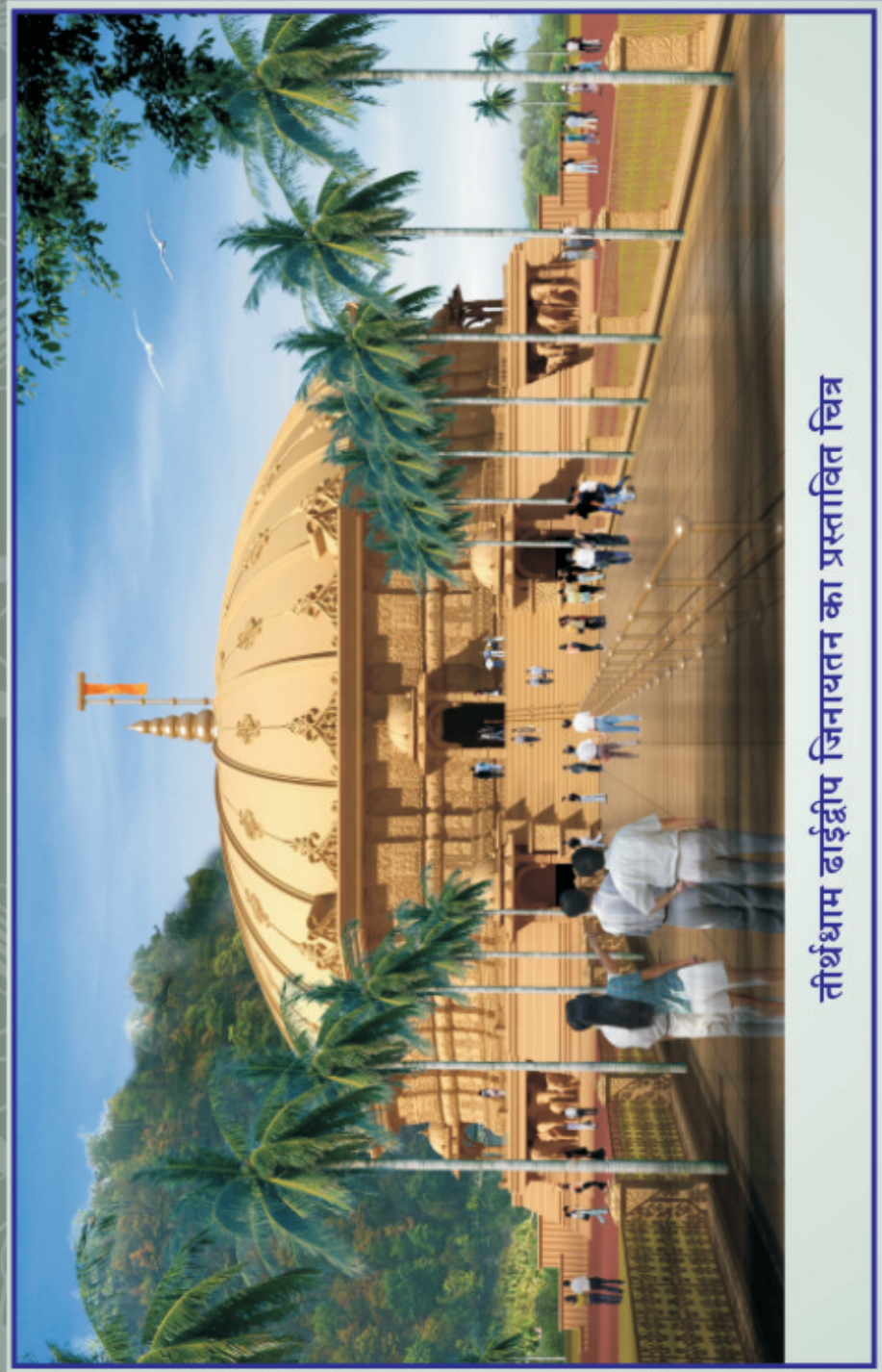

तीर्थधाम ढाईद्वीप जिनायतन का प्रस्तावित चित्र

R.N.I. No. 38278/83 *Postal Regd. No. RJ/JPC/M-32/2012-14*

ढाईद्वीप जिनायतन में विराजमान होने वाली 100 रत्नों की प्रतिमाओं एवं 281 जिनवाणी का दृश्य

सम्पादक :
डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल
शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., पीएच. डी.
सह-सम्पादक :
डॉ. संजीवकुमार गोधा
एम.ए.द्वय , नेट, एम. फिल (जैनदर्शन), पीएच.डी.
प्रकाशक एवं मुद्रक :
ब्र. यशपाल जैन, एम. ए.
द्वारा पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के लिये
जयपुर प्रिंटर्स प्राइवेट लि., जयपुर से मुद्रित एवं प्रकाशित।

If undelivered please return to -- **Pandit Todarmal Smarak Trust , A-4, Bapu Nagar, Jaipur - 302015**